Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152m N
F4.1

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152mN 8395
F4.1

Shri Sharda.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'श्रीशारदा' के ग्राहकों को
खास रियायत।

0152 N
F4.1
8395

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीशारदा में विज्ञापन देने के नियम

१.—विज्ञापन की दर इस प्रकार है : प्रथमवार

एक पृष्ठ का	... ...	१०)
आधा पृष्ठ का	... ...	६)
चौथाई पृष्ठ का	... ...	३॥)
अष्टमांश पृष्ठ का	... ...	२)
कवर के तीसरे पृष्ठ का	...	१३)
पाठ्य विषय के पहिले और पीछे के पृष्ठ		१२)

२.—विज्ञापन का मूल्य अग्रिम लिया जाता है।

३.—श्रीशारदा एक वर्ष में चार बार छपती है अतएव चार बार का कन्ट्राक्ट करने वालों को उक्त दर से ।) छूट दी जाती है।

४.—यह छूट उन्हीं को दी जायगी जो वर्ष भर में विज्ञापन के विषय को बदलेंगे नहीं।

प्रबन्धक,
राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर
जबलपुर।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 8395

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीशारदा

वर्ष १ } माघ, १९८१ { अङ्क ४

हिन्दी-साहित्य में भारतीय इतिहास की सामग्री

इतिहास क्या है ?

इतिहास के सम्बन्ध में कुछ लोगों में बहुत भ्रम फैला हुआ है। वे उसे अत्यन्त सीमाबद्ध और संकुचित रूप प्रदान करते हैं। प्रोफेसर सीली का मत है कि इतिहास अतीत राजनीति है। तो क्या इतिहास केवल प्राचीन कालीन राजनैतिक घटनाओं का ही तिथि-पत्र है ? क्या प्राचीन शासकों, सेनानायकों आदि के ही चरित्रों, युद्धों और नर-संहार ही का नाम इतिहास है ? वास्तव में उपर्युक्त परिभाषा से इतिहास का मान भङ्ग होता है। उसकी उदारता और व्यापकता को क्षति पहुँचती है। इस प्रकार का इतिहास केवल राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना और युद्ध-विद्या-पटु पुरुषों की सामग्री हो जाता है। उसका महत्व फीका पड़ जाता है।

इतिहास-शास्त्र के अन्य आचार्य्यों ने इतिहास की इस अनुदार परिभाषा को स्वीकार न कर उसकी व्यापकता पर विशेष आग्रह किया है। लार्ड ऐक्टन, फ्रेडरिक हैरिसन आदि विद्वानों ने उपर्युक्त परिभाषा में अव्याप्ति का दोष बताया है। एक तो इतिहास का सम्बन्ध केवल अतीत काल ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से न होकर वर्तमान काल से भी है। फिर इतिहास केवल राजनीति का अनुचर नहीं है। उसका सम्बन्ध मानव जीवन के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से है। जिस प्रकार मनुष्य केवल राजनैतिक जीव ही नहीं है, वरन् उसके जीवन में कई पहलू हैं; उसी प्रकार उसके इतिहास का क्षेत्र भी अत्यन्त विशाल और विस्तीर्ण है। किसी जाति के इतिहास में उसकी उन समस्त भावनाओं, विचार-तरङ्गों, आकांक्षाओं, उद्देशों और आन्दोलनों का चित्र होना चाहिए जो उस राष्ट्र के जीवन के समस्त क्षेत्रों—राजनैतिक, सामाजिक, धार्म्मिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि—में दृष्टिगत हों। जिस प्रकार किसी प्रसिद्ध नेता के चरित्र में हम उसके कार्य्यों के केवल एक ही अङ्ग का अध्ययन नहीं करते, उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन के सांगोपांग अध्ययन का नाम इतिहास है। इतिहास-लेखन की वर्तमान गति इसी मत की ओर है। प्राचीन ऋषियों ने भी व्यापक अर्थ में पुराण शब्द को प्रयुक्त किया था। अमरकोश, विष्णु, मत्स्य, वायु आदि पुराणों में पुराण शब्द की यह व्याख्या की गई है—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥"

एक और प्राचीन श्लोक में इतिहास की इस प्रकार व्याख्या है—

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितं।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥"

इतिहास के सूत्र—

व्यापक रूप में इतिहास शब्द का प्रयोग करने पर यह प्रश्न होता है कि इतिहास के मूल सूत्र क्या हैं? इतिहास-रचना की सामग्री कहाँ से प्राप्त होती है? इतिहासकारों को किन किन क्षेत्रों में सामग्री की खोज करनी पड़ती है? इतिहासकार के लिए कोई भी सूत्र उपेक्षणीय नहीं। इतिहास-मकरन्द-ग्राही इतिहासकार-मधुप अगम्य और निर्जन बनों के एक एक पुष्प से चुन चुन कर पराग एकत्र करने में सङ्कोच नहीं करता। जहाँ कहीं भी उसे इतिहास की सामग्री उपलब्ध होने की आशा होती है, वहीं वह निरन्तर परिश्रम और अजेय अध्यवसाय के साथ उसके अन्वेषण में निरत हो जाता है। दुर्गम पर्वतों की शिलाओं में उत्कीर्ण अशोकादि के लेखों के बाँचने में वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई कसर नहीं करता। पाटलिपुत्र तक्षशिला आदि के प्राचीन भग्नावशेषों, स्मारकों, मन्दिरों, मूर्तियों आदि से भी उसे पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। कनिष्क आदि की प्राचीन मुद्राओं, मुहरों आदि के आधार पर भी प्राचीन इतिहास की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा चुकी हैं। अजन्ता की चित्रावली ने गुप्त-कालीन भारत के विषय में हमारे परिज्ञान की अत्यधिक वृद्धि की है। मुगल-शासकों के फर्मानों और परवानों के द्वारा अनेक नई बातें ज्ञात हुई हैं। ब्रिटिश शासकों के पत्र व्यवहार, सनदों, सन्धिपत्रों, सरकारी कागजात आदि के अध्ययन से तात्कालीन इतिहास की रचना की गई है। समकालीन यात्रियों और लेखकों के लेखों और ग्रन्थों का महत्व तो स्पष्ट ही है। मेगस्थनीज, फाहियान, हैनसांग, अलबेरूनी, अब्दुर्रज्जाक, रो, बर्नियर आदि विदेशी यात्रियों का भारतीय इतिहासकारों पर बड़ा भारी ऋण है। इसी प्रकार बाबर के आत्मचरित, औरंगजेब के रुक्के, डूप्ले की डायरी, ईस्टइण्डिया-कम्पनी के फैक्टरों के पत्र भी इतिहासकार के लिए अमूल्य हैं।

समकालीन साहित्य में इतिहास की सामग्री—

इन सूत्रों के अतिरिक्त समकालीन साहित्य के आधार पर भी इतिहास को अत्यधिक सहायता मिलती है। यहाँ पर हम साहित्य शब्द को कुछ संकुचित अर्थ में प्रयोग करते हैं। हम यहाँ कल्हण की राजतरङ्गिणी, अबुल-फज्ल के अकबरनामा आदि इतिहास-ग्रन्थों को साहित्य में परिगणित न करेंगे। हमारा तात्पर्य्य काव्य, नाटक, उपन्यास, कथा, गाथा, गीत, धर्म-ग्रन्थों आदि से है। प्रश्न यह है कि इस अर्थ में प्रयुक्त साहित्य से भी इतिहासकारों को अपने इतिहास-निर्माण में कुछ सहायता मिलती है या नहीं? जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, यदि इतिहास केवल शुष्क घटनाओं का तिथि-पत्र न होकर राष्ट्र के समस्त जीवन का चित्र है, तो समकालीन साहित्य में उस युग के इतिहास का प्रतिबिम्ब अवश्य उपलब्ध होगा। जिन बातों का उल्लेख बहुधा विशेष प्रयत्न से लिखे गये क्रमबद्ध इतिहास-ग्रन्थों में नहीं होता, उन पर कभी कभी साहित्य आश्चर्यजनक प्रकाश डालता है। इसका प्रधान कारण यह है कि साहित्य का सम्बन्ध जाति के अङ्ग-अङ्ग और कोने कोने से होता है। साहित्य में पूर्ण जनसत्ता का साम्राज्य है। नाटक-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कार और उपान्यास-कार की समदृष्टि में समाज का हीन से हीन पुरुष राजा का समकक्ष है। कालिदास यदि दुष्यन्त की मानसिक भावनाओं का चित्र खींचता है तो बेचारे धीमर के सुख-दुःख का भी विवेचन करता है। जो वास्तव में रस-सिद्ध कवीश्वर हैं उनके ग्रन्थों में जातीय जीवन के प्रत्येक कोने का प्रतिबिम्ब रहता है। यदि उनकी दृष्टि व्यापक और उनके विचार उदार हैं तो सामयिक परिस्थिति की छाया उनको रचनाओं में स्वतः ही आ जाती है। तभी तो किसी युग के इतिहास का समीचीन विधि से अध्ययन करने के लिए उस युग के साहित्य का अध्ययन करना अनिवार्य है। यदि किसी इतिहासकार की कृपा से हमें उस समय का साधारण इतिहास ज्ञात भी हो, तो भी तत्कालीन जातीय प्रवृत्तियों, भावनाओं और आकांक्षाओं की गति और धारा समझने के निमित्त हमें साहित्य के 'गहरे पानी' में पैठना परमावश्यक है, नहीं तो केवल राजनैतिक इतिहास की छान-बीन में पड़े रह कर हम किनारे ही बैठे रहेंगे।

यहाँ पर एक बात और स्पष्ट कर देना उचित है। हम कह चुके हैं कि इस स्थान पर हमने साहित्य को परिमित अर्थ में प्रयुक्त किया है, अर्थात् हमने इतिहास ग्रन्थों को यहाँ पर साहित्य में परिगणित नहीं किया, परन्तु फिर भी एक प्रकार से साहित्य-शब्द का कुछ अधिक व्यापक अर्थ में प्रयोग हो ही गया है। कला की दृष्टि से साहित्य का जो अर्थ है वह और भी संकुचित है। कला की कसैाटी में कसने से केवल सुसाहित्य ही साहित्य के पद पर आसीन होने के योग्य होता है। उसकी परख से जो फीका अथवा कच्चा सिद्ध होता है उसे कलाविद् आलोचक भ्रष्ट और निम्न समझ कर रद्दी की टोकरी में फेंक देता है। यदि कोई कविता पिंगल-शास्त्र की दृष्टि से भाव-रहित रसहीन और कुरुचि पूर्ण होती है तो वह उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। उसे सच्चे रत्नों, मणियों, स्वर्ण, आदि से काम है न कि झूठे बनावटी मोतियों, घोंघों और मुलम्मों से। परन्तु जिस प्रकार न्यारिये सुनार की फेंकी हुई राख से प्रयत्न-पूर्वक सोना-चाँदी ढूंढ़ निकालते हैं, उसी प्रकार इतिहास के विद्यार्थी के लिए कला-निपुणत आलोचक-द्वारा अस्वीकृत भ्रष्ट और अश्लील कुसाहित्य भी त्याज्य नहीं है। इतिहासकार की दृष्टि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में किसी प्रकार का साहित्य भी उपेक्षणीय या अस्पृश्य नहीं है। कला अश्लीलता से दूर भले रहे, परन्तु विज्ञान की दृष्टि में कोई चीज अश्लील नहीं है और न उसे छन्दोभंग, नीरसता, कुरुचि आदि की ही कुछ चिन्ता है। इस प्रकार ऐतिहासिक आलोचना के विचार से सुसाहित्य और कुसाहित्य दोनों एक समान उपयोगी और आवश्यक हैं। उत्तम काव्य, नाटक, उपन्यास आदि के साथ साथ अशिक्षितों के अश्लील गीत, मसले आदि भी जातीय जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार इतिहासकार साहित्य में से प्रचुर सामग्री का अन्वेषण कर सकता है। यों तो सभी युगों के लिए यह बात ठीक है, परन्तु अत्यन्त प्राचीन समय के इतिहास-निर्माण के लिए, जिसका लिपिबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है, साहित्य ही एकमात्र सूत्र है। गुप्त-वंश और मौर्य-वंश का इतिहास शिला-लेखों, सिक्कों और विदेशी यात्रियों के लेखों से प्राप्त भी हो जाता है, परन्तु उससे भी पूर्व, प्राक्-बौद्ध-काल, महाभारत-युद्ध और रामायण के समय तथा वैदिक युग के इतिहास के लिए हमारा एक मात्र आश्रय तत्कालीन साहित्य है। ऋग्वेद के वैज्ञानिक अध्ययन ने भारत के इतिहास ही पर नहीं, संसार के इतिहास पर कितना प्रकाश डाला है और कितनी प्राचीन ऐतिहासिक गुत्थियों को सुलझाया है यह इतिहास के विद्यार्थियों को विदित है। इसी प्रकार श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य ने महाभारत और श्रीयुत प्रो० समाद्दार ने वाल्मीकीय रामायण के ऐतिहासिक अध्ययन-द्वारा प्राचीन भारत के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान की अत्यधिक वृद्धि की है। श्रीयुत पार्जिटर ने पुराणों में सञ्चित ऐतिहासिक सामग्री की अच्छी छान-बीन की है। बौद्ध-जातकों और अन्य ग्रन्थों के आधार पर रीज डेविड्स आदि विद्वानों ने बौद्ध-भारत का क्रमबद्ध इतिहास लिखा है। अन्य देशों में भी प्राचीन काल के इतिहास की रचना के लिए साहित्य का ही सहारा लेना पड़ा है। ग्रीस के प्राक् पौराणिक-काल का इतिहास होमर के 'इलियड' और 'ओडेसी' पर ही स्थित है।

हिन्दी-साहित्य और भारतीय इतिहास—

तो अब प्रश्न यह है कि हिन्दी-साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से परिशीलन करने से इतिहासकारों को क्या कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है? इसका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्तर निस्संदेह और निस्संकोच दिया जा सकता है—अवश्य। श्रीयुत ग्रीन ने अपने सुप्रसिद्ध " अंग्रेज जाति के इतिहास " में इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि किसी जाति के इतिहास लिखने में उसके साहित्य का कितना उपयोग किया जा सकता है। शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर समकालीन इङ्गलैण्ड का जीता-जागता चित्र खींचा जा सकता है। इस विषय पर भी कई ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे जा चुके हैं। उनमें से अनेक विद्वानों-द्वारा रचित "शेक्सपियर्स इङ्गलैण्ड" (शेक्सपियर का इंगलैण्ड) और टाउनशेण्ड वार्नर रचित "इंग्लिश हिस्ट्री इन शेक्सपियर " (शेक्सपियर की रचना में इङ्गलैण्ड का इतिहास) सर्वोत्तम हैं। इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य के भण्डार में से ऐतिहासिक सामग्री भी खोज कर निकाली जा सकती है।

यह दुर्भाग्य का विषय है कि अभी तक हमारे देश के इतिहास लिखने में देशीय भाषाओं के साहित्य का यथेष्ट उपयोग नहीं किया गया है। कारण यह है कि अभी तक भारतीय इतिहास के लेखक अधिकांश विदेशीय ही रहे हैं। परन्तु अब कई भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। बंगाल में श्रीयुत डाक्टर दीनेशचन्द्र सेन ने मध्यकालीन बंगाल के इतिहास के अनेक रहस्यों का तत्कालीन बंगाली साहित्य-द्वारा उद्घाटन किया है। महाराष्ट्र में भी इस ओर कुछ काम हो रहा है। द्राविड़-देश में भी डाक्टर कृष्णास्वामी आयंगर ने तामिल-साहित्य के आधार पर दक्षिण भारत के इतिहास के कई अंगों पर प्रकाश डाला है। परन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हिन्दी-साहित्य का इस प्रकार से ऐतहासिक उपयोग अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ है। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने अपने ग्रन्थ "शिवाजी" में भूषण की रचनाओं का कुछ उपयोग किया है। श्रीयुत मोरलैण्ड ने मुगल-भारत का आर्थिक इतिहास दो ग्रन्थों में लिखा है। पहला " अकबर की मृत्यु के समय भारत " ३-४ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। दूसरा " अकबर से औरंग-जेब तक " अभी गतवर्ष (१९२३) प्रकाशित हुआ है। मोरलैण्ड सा० ने विशेषतः डच लेखकों के लेखों के आधार पर ही अपने ग्रन्थों की रचना की है। अपनी दूसरी पुस्तक की भूमिका में आप स्वीकार करते हैं कि अभी इस विषय पर अध्ययन का बहुत सा मसाला भारतीय साहित्य में छिपा पड़ा है

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और उसका समुचित उपयोग भारतीय विद्वान् ही कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मुगल-कालीन हिन्दी-साहित्य में तत्कालीन आर्थिक इतिहास के लिए प्रचुर सामग्री विद्यमान है।

हिन्दी-साहित्य का ऐतिहासिक महत्व—

हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ और उत्कर्ष मुसल्मानी समय में हुआ। मुसल्मानों के ही शासन-काल में उसका लालन-पालन और पोषण हुआ। इस काल में हिन्दी केवल हिन्दुओं ही की भाषा न थी। विजेता मुसल्मानों को भी अपनी मातृभाषा तुरकी, अरबी, फारसी आदि के स्थान पर साधारण बोल चाल में विजितों की ही भाषा का व्यवहार करना पड़ा; यहां तक कि अनेक मुसल्मानों ने हिन्दी में उत्तम, मधुर कविता भी की। अमीर खुसरू, कबीर, रहीम, रसखान, रसलीन आदि की रचनाओं का हिन्दी को गर्व है। अकबर, इब्राहीम, आदिलशाह सरीखे सम्राटों ने भी हिन्दी में रचना की है। इस विषय को अधिक विस्तार देने के लिए स्थान नहीं है। तात्पर्य यह है कि विजित हिन्दू जाति ने विजेता मुसल्मानों पर भाषा के क्षेत्र में विजय प्राप्त की। फारसी और तुर्की का मान हिन्दी के सम्मुख फीका पड़ गया। इंग्लैण्ड में भी नारमन विजेताओं ने अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति का आधिपत्य स्वीकार किया था। भारत में मुसल्मानी इतिहास और हिन्दी के मध्य इतनी घनिष्ठता स्थापित होगई कि दोनों का भाग्य संबद्ध हो गया। मुसल्मानी राज्य के प्रारम्भिक काल में हिन्दी का भी शैशव-काल व्यतीत हुआ। जब मुसल्मानी शासन की नींव सुदृढ़ होने लगी तो हिन्दी को भी परिपक्वावस्था प्राप्त हुई। जब मुसल्मानों का सितारा बहुत बलन्द हुआ तो हिन्दी का सूर्य्य भी प्रखर प्रकाश से चमका। मुसल्मानी शासन अकबर, जहांगीर और शाहजहां के समय में सर्वोच्च विन्दु पर पहुंचा। इसी युग में सूर, तुलसी, केशव, गंग, रहीम आदि भाषा के रत्न प्रकट हुए। औरंगजेब के समय में मुगल-राज्य की वृद्धि अवश्य हुई थी पर वह श्रीहत हो चला था, इसी प्रकार देव, विहारी, भूषण, मतिराम आदि के समय में यद्यपि हिन्दी ने अलंकृत रूप धारण किया, परन्तु ये कवि सूर और तुलसी की समता नहीं कर सकते। मुगल-राज्य की कान्ति क्षीण हो जाने पर हिन्दी की कौमुदी भी फीकी पड़ गई। मराठी और अंग्रेजी राज्यों में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दी की प्रतिष्ठा नहीं रही। इधर फिर अनेक कारणों से हिन्दी ने उन्नति की और करवट ली है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य की ऐतहासिक महत्ता अन्य बातों पर भी निर्भर है। उत्तरीय भारत में राम और कृष्ण की भक्ति की जो अपूर्व लहर आई, उसके प्रभाव से हिन्दी-साहित्य प्रतिष्ठित पद पर आसीन हुआ। यदि सूर, तुलसी, कबीर, केशव, रहीम, नाभाजी, रसखान, हितहरिवंश, नन्ददास, आदि का जन्म न होता तो सैकड़ों अलंकार-मञ्जूषाओं, पिंगल-महासागरों, और नायका-भेद की पेटारियों के होते हुए भी हिन्दी-साहित्य महामहिम न हो पाता। बिहारी के एक ही दोहे और मतिराम के एक ही सवैये में ५०-६० अलंकारों के अन्वेषण से इस कमी की पूर्ति न होती। हिन्दी को इस बात का गर्व है कि अनेक महात्माओं, सुधारकों और धर्म-प्रचारकों ने उसी के माध्यम से अपना उपदेश दिया। इतिहास की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की यह महत्ता कुछ कम नहीं है।

हिन्दी का साम्राज्य भारत के उस भाग में रहा है, जो प्राचीन आर्य्य-सभ्यता का केन्द्र था। इस लिये भी हिन्दी-साहित्य का अध्ययन ऐतिहासिक-महत्व रखता है। तदन्तर इसी देश में मुस्लिम-सभ्यता का भी अधिक प्राबल्य रहा। हिन्दी की तेजमिजाज बेटी उर्दू को मुसलमानों ने गले लगाया। बड़ी मां की इस बड़ी लड़की के कारण भी हिन्दी की निराली शान है और उसे वह पद प्राप्त है जो किसी और भारतीय भाषा के भाग्य में नहीं है।

हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री की खोज—

इस प्रकार यह बात निर्विवाद है कि ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एतदर्थ उसमें ऐतिहासिक सामग्री के अन्वेषण का प्रयास करना भी उतने ही महत्व का है। परन्तु इस कार्य्य के लिये कई बातों की आवश्यकता है। यथेष्ट अवकाश और परिश्रम के अतिरिक्त अनेक अन्य गुणों और योग्यता के विना यह महान कार्य्य विधिपूर्वक पूर्ण नहीं होसकता। इस कार्य्य का भार उठाने का संकल्प करने वाले का ऐतिहासिक ज्ञान जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा है। परन्तु इतिहास के अथाह ज्ञान ही से काम नहीं चलेगा। उसकी वृत्ति विवेचनात्मक और दृष्टि आलोचनात्मक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होनी चाहिये। उसे ऐतिहासिक पद्धति में अभ्यस्त होना चाहिये। इसके सिवा उसका हिन्दी-साहित्य का सांगोपांग और पूर्ण ज्ञाता भी होना परम आवश्यक है। हिन्दी का क्षेत्र इतना विस्तृत है—उसके अन्तर्गत इतनी अधिक प्रान्तीय बोलियां समाविष्ट हैं—कि उसमें पारंगत होना अत्यन्त कठिन है। फिर हिन्दी के सब ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं हैं। जो अभी हस्तलिखित रूप में हैं उनका दुर्लभ होना तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं, परन्तु जो छप चुके हैं उन सब का मिलना भी कठिन हो जाता है। कोई ऐसा बड़ा पुस्तकालय भी नहीं जहां इन सब प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों का संग्रह हो। तो फिर यह कार्य्य कैसे हो? इन पंक्तियों के लेखक में न तो उपर्युक्त योग्यता ही है और न उसे प्राचीन ग्रन्थों को पाने की कोई सुविधा ही है। अतएव प्रस्तुत लेख केवल इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि सम्भव है इसके द्वारा कुछ विज्ञ साहित्य-सेवियों का ध्यान इस विषय के महत्व की ओर आकर्षित हो। हम यहां केवल उदाहरणार्थ इस विशाल कार्य्य का दिग्दर्शन-मात्र कर संतोष करेंगे।

सब से पहले संक्षेप से हम उन ग्रन्थों के विषय में कुछ कहेंगे जो विशेष कर किसी स्पष्ट ऐतिहासिक आकांक्षा से लिखे गये हैं। जिनमें किसी ऐतिहासिक पुरुष के चरित्र का वर्णन किया गया है और जिनका वर्णन विषय प्रधानतः किसी पुरुष विशेष के जीवन की घटनाएं हैं और इसके सिवा जिसमें अन्य बातें गौण हैं। इस वर्ग में पृथ्वीराज-रासो, खुमान-रासो, परमाल-रासो, हम्मीर-रासो आदि ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में राजपूत-वीरों की कथाओं का वर्णन है। यह कहना कठिन है कि इन ग्रन्थों में वर्णित सभी घटनाएं विश्वस्त हैं, परन्तु इनका अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त राजपूताने में अनेक ख्यात प्रसिद्ध हैं जो अभी प्रकाशित नहीं हुए परन्तु उनमें से कुछ का उल्लेख टाड ने "राजस्थान" में, फार्बस ने "रसमाला" में, एल. पी. टैसिटोरी ने अपने लेखों में, स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने "राजपूताने के कवियों का इतिहास" में और लज्जाराम मेहता ने अपनी पुस्तकों में किया है। पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने राजपूताने के इतिहास पर एक वृहत् ग्रन्थ प्रकाशित करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की सूचना निकाली है। आशा है राजपूताने से सम्बन्ध रखने वाले समस्त ख्यातों आदि का आप उचित उपयोग करेंगे। वास्तव में इस समय आप से अधिक योग्य विद्वान् इस कार्य्य के लिये और कोई नहीं है।

नागरीप्रचारिणी सभा ने अनेक प्राचीन ग्रन्थों को छापकर हिन्दी का बड़ा उपकार किया है। उसके द्वारा प्रकाशित सुजान-चरित्र, छत्रप्रकाश, जंगनामा, राजविलास आदि ग्रन्थों में इतिहासकारों के लिये बहुत कुछ अमूल्य सामग्री प्राप्त हो सकती है। सूदन-कृत सुजानचरित्र में प्रसिद्ध जाट-वीर सुजानसिंह उर्फ सूरजमल का वर्णन है। यह वर्णन उन युद्धों का है जिनमें मुगल-साम्राज्य के पतन और मराठों के उत्कर्ष के समय सूरजमल ने भाग लिया था। इस काल के इतिहासकार मि० इरविन ने इस ग्रन्थ का उपयोग किया था। लालकवि कृत छत्रप्रकाश में प्रसिद्ध बुंदेला-वीर छत्रसाल का इतिहास वर्णित है। कैप्टेन पागसन ने अपने ग्रन्थ "बुन्देलों का इतिहास" में इस समस्त ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इसी से इसका महत्व प्रकट है। कवि श्रीधरकृत जंगनामा में फर्रुखसियर के युद्धों का वर्णन है। राज-विलास में मेवाड़ के सुप्रसिद्ध राणा राजसिंह का चरित्र अंकित है। जिन ग्रन्थों का उल्लेख ऊपर हुआ है वे प्रायः सभी राजपूताने से सम्बन्ध रखते हैं। राजपूत राजाओं को अपनी और अपने पूर्वजों की विरदावली लिपिबद्ध कराने की उत्कट अभिलाषा रहती थी। चारणों को यह काम सौंपा जाता था। यदि भारत के अन्य हिन्दू-नृप भी अपनी कीर्ति के प्रचार के लिये उदासीन न रहते तो प्राचीन इतिहास के खोज में इतनी कठिनाई न होती। इन ग्रन्थों ने हिन्दी-साहित्य में इतिहास-अंग की बहुत कुछ पूर्ति की है।

परन्तु इस लेख का उद्देश्य अधिकतर इस प्रकार के ग्रन्थों से नहीं है। हिन्दी के साधारण काव्य-ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है। इनमें राजनैतिक घटनाओं का वर्णन तो नहीं मिलेगा, परन्तु इनके द्वारा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और नैतिक इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ेगा।

अनेक कवियों ने अपने समकालीन शासक के शासन के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया है। मुसलमान कवि कुतुबनशेख ने 'मृगावती' में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शेरशाह के पिता हुसेनशाह के दान की प्रशंसा की है—

"दान देइ औ गनत न आवे। बलि औ करन न सरवरि पावे।"

मिश्रबन्धु विनोद पृ० २६०

शेरशाह का भी नाम उदारता के लिये प्रसिद्ध है। इस विषय में सभी इतिहासकारों का एक मत है। मलिक मुहम्मद जायसी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "पद्मावत" के प्रारम्भ में "शेरशाह दिल्ली सुलतान" की प्रशंसा करता है।

"हाथ सुलेमा केर अंगूठी। जग कहं दान दीन्ह भरि मूठी॥
जो गढ़ नय नाहीं काहू, चलत होय सब चूर।
जो वह चढ़ै भूमिपति, शेरसाह जगसूर॥"

क्या इस दोहे में शेरशाह के चुनार, कालञ्जर आदि की विजय का स्पष्ट उल्लेख नहीं है?

"गऊ सिंघ रेंगहिं एक बाटा। दोनों पानि पियें एक घाटा॥
नीर छीर छानै दरबारा। दूध पानि सब करै निरारा॥"

इतिहास शेरशाह के न्याय का साक्षी है।

अकबर के सम्बन्ध में समकालीन हिन्दी-साहित्य में बहुत कुछ चर्चा है। होलराय का प्रसिद्ध कवित्त "दिल्ली ते न तख्त ह्वै है" इत्यादि हम अन्यत्र श्रीशारदा के प्रथम अंक में दे चुके हैं। प्रियादास-रचित भक्तमाल की टीका में बादशाह का उल्लेख कई भक्तों के सम्बन्ध में आया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू-प्रजा और मुगल-सम्राट् के मध्य कितनी घनिष्ठता स्थापित हो गई थी। जैनकवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित 'अर्धकथानक' में अकबर की मृत्यु का उल्लेख किया है। (दे० नाथूराम प्रेमी कृत 'हिन्दी-जैन-साहित्य का इतिहास' पृ० ४२)। इसी प्रकार बीरबल और रहीम आदि का भी गंग आदि की रचनाओं में उल्लेख है। केशवदास ने 'जहांगीर चन्द्रिका' और उसमान कवि ने 'चित्रावली' में जहांगीर की प्रशंसा की है।

"जहांगीर के अदल पर, पूरि रहा जग चैन॥
स्रवन सुना नौसेरवां, साह सो देखा नैन॥"

(चित्रावली-नागरी पु० संसकृत पृ० ८)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जहांगीर स्वयं अपने 'तुजक' में अपनी न्यायप्रियता का बड़े गर्व के साथ उल्लेख करता है। इसी ग्रन्थ में कवि उसमान ने जहाँगीर के नौरोज-समारोह का वर्णन किया है।

शाहजहाँ और औरंगजेब के सम्बन्ध में भी कवीन्द्राचार्य्य सरस्वती, कृष्ण कवि, भूषण आदि ने अपनी रचनाओं में कुछ जिक्र किया है। भूषण और शिवाजी तथा छत्रसाल का सम्बन्ध तो प्रसिद्ध ही है। अन्य छोटे छोटे शासकों, राजाओं आदि के सम्बन्ध में, हिन्दी-साहित्य में अनेक उल्लेख हैं, जिनके वर्णन के लिये यहां पर्याप्त स्थान नहीं है।

अंग्रेज़ों का उल्लेख भी कई स्थानों में है। नाथकवि, जो शायद संवत् १८३० अर्थात् वारेन हेस्टिंग्स के शासन के समय विद्यमान था, "प्रबल फिरंगी" की तोपों और "फौज चतुरंगी" का वर्णन कर कहता है कि उनका "यशदशोदिशन में छाइ रह्यौ"। यह तो तब की बातें हैं जब अंग्रेजी राज्य की नींव भारत में पड़ रही थी। परन्तु जहाँगीर के समय में, जब हाकिन्स टामस रो आदि अंग्रेज-यात्री भारत में आये थे, उपर्युक्त कवि उसमान ने "मद वराह भोजन जेहि केरा" वाक्य में अंग्रेजों के भोजन-पान का सच्चा चित्र खींचा है। वास्तव में अंग्रेज लोग सर्वदा से मदिरा प्रिय रहे हैं। शेक्सपियर ने भी अपने नाटकों में यत्र-तत्र उनके इस व्यसन की ओर संकेत किया है। उसमान ने बंगालियों के भोजन का भी विनोद-पूर्वक यह वर्णन किया है—

"सब कहँ अमृत पाँच हैं, बंगाली कहँ सात।
केला, काँजी, पान, रस, साग, माँछरी, भात॥"

तुलसीदास ने राक्षसों का जो भोजन बताया है वह कुछ परिवर्तन से मुसलमानों का भोजन माना जा सकता है। हिन्दुओं के पवित्र भोजन का उत्तम वर्णन सूरसागर, पद्मावत आदि में मिलता है।

इसी प्रकार वस्त्र-परिधान के सम्बन्ध में भी हिन्दी की प्राचीन रचनाओं से हमें बहुत कुछ ज्ञात होता है। तुलसीदास की 'पीत झिंगुरिया' 'पीत चौतनी,' 'उपरना काँधा सोती' और सूरदास-वर्णित 'कुल्ला' प्राचीन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आर्य्य परिधान नहीं थे। वे प्रधानतः मुगल-कालीन थे। कवीर ने स्त्रियों और विशेषकर नव विवाहिता बधुओं के पहिनावे का प्रसंगवश वर्णन किया है। उनके पदों और शब्दों में चोली, चुनरी, घूंघट, झुलनियाँ, ओढ़नी, घुँघरू, हार, विछिया, नथ, कड़ा, कण्ठा आदि वस्त्राभूषण का उल्लेख है। तुलसी-दास ने 'कंकण-किंकिण-नूपुर-ध्वनि' सुनाई है। कवित्त-रामायण के प्रारंभ में उन्होंने जो बालक राम के परिधान का वर्णन किया है उसमें भी सम-कालीन दशा का प्रतिबिम्ब है। यही बात सूरसागर के बालकृष्ण के पहि-रावे के सम्बन्ध में कही जा सकती है। राजसी ठाट और पहिरावे का सच्चा चित्र महात्माओं की रचनाओं में नहीं, किन्तु राजसी कवि केशवदास की रामचन्द्रिका में मिलेगा। गरीब ब्राह्मण के पहिरावे का मनोग्राही वर्णन नरोत्तमदास ने अपने सुदामा चरित्र में किया है। गरीबों की 'धोती फटी औलटी दुपटी', उनके 'सीस पगा, न झंगा तनपै', और पैरों में उपानह का सामान नहीं होता था। अमीर लोग ही 'पनही' और पादुका का प्रयोग करते थे।

सर्वसाधारण के उत्सवों, समारोहों, त्यौहारों, विनोदादि की सामग्री के सम्बन्ध में भी हम हिन्दी-साहित्य से बहुत कुछ मसाला खोज कर निकाल सकते हैं। चौपड़, गंजिफा, शतरंज, चौगान, गेंद, हिंडोला कबूतर-बाजी, नट, बाजीगर, बन्दरों के खेल, इन्द्रजाल, पतंग, भाँट, गुड़िया, कठपुतली, शिकार, कुश्ती, अश्वारोहण, मुद्गर, गदा, मेला, आदि का उल्लेख कवीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम, उसमान, प्रियादास आदि की रचनाओं में मिलता है। इनमें लड़कों, लड़कियों, नर, नारी, राजा और रंक सभी के विनोद और खेलों का नाम आगया है। इन्हीं कवियों के ग्रन्थों के द्वारा हम उस समय के हिन्दू-विवाह की रीतियों को भी जान सकते हैं। जायसी और उसमान का भी हिन्दू-विवाह का वर्णन, साधारणतः अच्छा है, परन्तु उनके वर्णन उतने सूक्ष्म और विस्तार युक्त नहीं हैं जितने तुलसीदास के। गोसाईंजी ने तो अनेक स्थानों पर विवाह-वर्णन किया है। रामायण में शिव-पार्वती और राम-सीता का, जानकीमंगल में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानकी का और पार्वतीमंगल में पार्वती का विवाह सांगोपांग वर्णित है। रामलला-नहछू में भी विवाह के एक अंग का विस्तृत वर्णन है। इन में वरीक्षा, फलदान, मायन, तैल, नहछू, मड़वा, भौंरी, पाणिग्रहण, अगवानी जनवासा, दुवारचार, ज्यौनार, गारी, दायज, नेग, निछावर, परिछन, बिदा, गौना आदि प्रायः सभी कृत्यों और रस्मों का वर्णन है। तुलसीचरित्र के लेखक का कथन है कि तुलसीदास के तीन विवाह हुए थे। सम्भव है इसीलिए उन्हें विवाह की छोटी-मोटी प्रायः सभी रीतियाँ मालूम थीं। विवाह-विषय में उनका अनुभव बुड्ढी स्त्रियों से कुछ कम नहीं था। केशव-दास का राम-विवाह दूसरे ही ढँग का है। राजसी ठाट से रहने वाले केशव भला गोसाइंजी की भाँति इन छोटी बातों में कब पड़ने लगे। वे पाणिग्रहण, मण्डप, भँवरी आदि के वर्णन करने के स्थान में पाठकों के मनोविनोदार्थ अमूल्य साज, रत्नों आदि की चर्चा और हाथी, घोड़ों आदि की संख्या गिनाने में ही लग गये हैं। कबीर ने अधिकतर नई दुलहिन, डोली, कहार, गौना, ससुरे आदि ही का उल्लेख किया है। वे तुलसीदास की भाँति विवाह-विषय के विशेषज्ञ न थे।

उस समय के हिन्दू-समाज का साधारण चित्र राम-चरित मानस के उत्तरकाण्ड में वर्णित कलिकाल-वर्णन में मिल सकता है। हिन्दू-धर्म के अनेक नये सम्प्रदायों, साधु-वेषधारी ठगों और धूर्तों, वर्णा-श्रम धर्म की अवनति, कौटुम्बिक अव्यवस्था, प्राचीन धर्म निष्ठा की ग्लानि आदि की ओर इसका लक्ष्य है। प्रियादास की टीका में भी, जो औरंगजेब के मरणो-परान्त लिखी गई थी, इस बिगड़ी हुई दशा का प्रतिबिम्ब मिलता है; परन्तु फिर भी सच्चे साधु और सन्त सत्यधर्म और भक्ति का उपदेश करते दिखलाई पड़ते हैं।

विद्या की अवनति भी मुगल-राज्य के विनाश के साथ साथ प्रारम्भ हुई। अब कविता के पोषक नहीं रहे। बादशाहों और नवाबों के दरबारों में कवियों की प्रतिष्ठा फीकी पड़ गई। उस समय का चित्र कई कवियों ने खींचा है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"गुण ना हिरानो गुण-गाहक हिरानो है ।"
"सूम के कवित्त करि मन में गलानि होति ।"
"कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया,
सलग रुपैया भैया कापै दियो जात है ।"
"शाह भये सूमड़ा...काके ढिग जाई काहि कवित सुनाई,
भाई अब कविताई रही फजिहतिताई है ।"

इत्यादि पद्यों में इस दशा का चित्र है।

यात्रा की कठिनाइयों की ओर भक्तमाल में संकेत है । बटमार, डाकू, चोर आदि बटोहियों को लूट कर मार भी डालते थे । यात्रा अधिकतर ऊँट और घोड़े ही के द्वारा होती थी। अमीर लोग पालकी में बैठते थे। उत्तम सड़कों के अभाव के कारण बैलगाड़ा, घोड़ागाड़ी और रथ आदि का प्रयोग कम होता था। नदियों पर पुल बहुत कम थे, परन्तु घाटों पर नावों का अच्छा प्रबन्ध था। ये सब बातें भी मुसलमानी काल के हिन्दी-साहित्य से प्रकट होती हैं।

प्रसंग वश कहीं कहीं कुछ राजकीय विधानों का उल्लेख भी पाया जाता है। रहीम के एक दोहे में नव-प्रचारित दाग-प्रथा का स्पष्ट उल्लेख है। सूरसागर के एक पद में उस समय के शासन में अनेक पारिभाषिक शब्द आये हैं। प्रियादास की टीका के अन्तिम कवित्त तथा अन्य स्थलों से भी उस समय के दंड-विधान का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। उस काल में अंग भंग करने, हाथी के तले कुचलाने, दीवाल में चुनाने, कोड़ा मारने आदि अनेक दारुण यातनाओं का प्रचार था।

व्यवसायों की दशा का वर्णन भी इस साहित्य में मिलता है। कबीर के वचनों में बढ़ई, लोहार, सुनार, नट, बाजीगर आदि का उल्लेख है । किसानों की दशा अच्छी नहीं थी। गोपालचन्द्र मिश्र कहते हैं—

"राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नहिं खोता दिन, योंही रहै लेसन सयान को।
देह में न चाम रहै हाथ में न दाम याते कहत 'गुपाल' काम कठिन किसान को।"

इसी प्रकार तुलसीदास जी का एक दोहा भी इसी दुर्दशा को प्रमाणित करता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। इससे जान पड़ता है कि "उत्तम खेती मध्यम बान अधम चाकरी भीख निदान" वाली कहावत उस काल के लिए नहीं थी।

उस समय वैद्यक अवनति पर थी। अनेक स्थलों पर वैद्यों की निन्दा है और उनका मजाक उड़ाया गया है। कायस्थों पर भी इसी प्रकार की कृपा की गई है। शायद आमिल, कानूनगो और पटवारी, जो बादशाही समय में अधिकतर कायस्थ ही होते थे, प्रजा को अधिक तंग करते होंगे। इसी से वे कवियों की कृपा के पात्र बने हैं। स्त्रियों में चरखे का खूब चलन था। कबीर ने तो कई पद चरखे ही पर कहे हैं। कोल्हू और ईख के पेरने का भी कई स्थानों पर वर्णन है।

कई नगरों का भी उल्लेख है। उसमान ने गाजीपुर का, होलराय ने आगरा का, गुमानी कवि ने अलमोड़ा, काशीपुर का, और अन्य कवियों ने काशी, चित्रकूट, पुरी, अयोध्या, प्रयाग, ओड़छा, दिल्ली, सीकरी, कालपी, सितारा आदि का थोड़ा बहुत वर्णन किया है। कुछ नगर उस समय भी किसी विशेष पदार्थ के लिए प्रसिद्ध थे। कवि श्रीपति ने अजमेर के फुलेल, मुलतान की कमान और काबुल के मेवा के 'नीके' होने की बात कही है। कवि बेनीप्रवीन ने जिस लखनऊ के कीच के मुकाबिले मीच को पसन्द किया है वह नवाबों का लखनऊ न था। बेनी उर्दू-कवि की भाँति "लखनऊ हम पर फिदा औ हम फिदाए लखनऊ" तो भला कैसे कह सकते थे? वास्तव में उस समय नगरों की संख्या कम थी। अधिकांश जनता ग्रामों में निवास करती थी। उस समय का जीवन सरल और आवश्यकताओं के कम होने के कारण थोड़ी आय पर भी लोग गुजर कर लेते थे और उसी में वे सन्तुष्ट थे। घाघ ने ग्रामीण सन्तोष और प्रसन्नता का कैसा उत्तम चित्र सामने खड़ा कर दिया है।

"भुइयाँ खेड़े हर हूवे चार। घर हूवे गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जड़हन का भात। गागल निबुआ औ घिऊ तात॥
सहरस खंड दही जो होय। बाँके नैन परोसै जोय॥
कहै घाघ तब सब ही झूठा। उहाँ छाँड़ि इहवैं बैकुण्ठा॥"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परन्तु कभी कभी यह ग्रामीण बैकुण्ठ नरक बन जाता था। कभी कभी "फूस नाहीं फांस नाहीं छप्पर पै घास न बड़ेरी नहीं बाँस तहां" आदि कष्टों का वर्णन है। इसी प्रकार बैताल कवि कहता है—

"दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरनि में।
पुन्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में॥
राजा करै न न्याय, प्रजा की होति खुवारी।
घर घर में वे पीर, दुखित भे सब नर नारी॥"

परन्तु हमारे पूर्वज तिस पर भी सन्तोष कर लेते थे। जहां "राजा करै सो न्याय पांसा परे सो दांव" की मनोवृत्ति थी और जहां "टूटि खाट, घर टपकत, टटियौ टूटि" की दशा में भी "पिय की बांह, उसिसवा सुख कै लूटि" होती थी, वहां असन्तोष का निवास कैसे हो सकता था।

हिन्दी-प्रदेशों में प्रचलित अनेक लोकोक्तियों के अध्ययन से भी प्रस्तुत विषय के लिये सामग्री मिल सकती है। अभी तक इस विषय पर कुछ भी काम नहीं हुआ है। बहुत दिन की बात है रिजली साहब ने अपने ग्रन्थ "दि पीप्ल्स ऑव इण्डिया" में हिन्दी की कुछ कहावतों के आधार पर जाति-व्यवस्था पर कुछ विचार प्रकट किये थे। आनन्द का विषय है, अभी हाल में कलकत्ते से एक लोकोक्तिकोश प्रकाशित हुआ है; परन्तु अभी उन लोकोक्तियों का सविधि किसी ने अध्ययन नहीं किया है। कहावतें वास्तव में राष्ट्रीय मनोवृत्ति अन्तस्तल से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं। कुछ कहावतें अश्लील भी होती हैं; परन्तु जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, इतिहास के विद्यार्थी के लिये अश्लील होने के कारण वे त्याज्य नहीं हैं। स्थानाभाव से हम केवल एक-दो दृष्टान्त देकर कहावतों के ऐतिहासिक महत्व की ओर संकेत करेंगे। "दिल्ली की कमाई। चपरघटा में गँवाई॥" "बारह बरस दिल्ली रहे, पर भाड़ ही झोंका किये।" इन मसलों से तीन बातों का पता लगता था। दिल्ली जाकर बादशाही नौकरी कर लोग अमीर होकर घर लौटते थे। रास्ते में चोर डाकू खूब थे, इसलिये रुपया लेकर यात्रा करना खतरनाक था। दिल्ली उस समय में शिष्टाचार, सभ्यता, विद्या, संस्कृति आदि का केन्द्र गिना जाता था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहावतों के अतिरिक्त प्रचलित कथाओं, पहेलियों, गीतों आदि की गुदड़ियों में इतिहास के विद्यार्थी के लिये छिपे हुए अमूल्य लाल प्राप्त हो सकते हैं।

तात्पर्य्य यह है कि हिन्दी-साहित्य में भारतीय इतिहास की रचना के लिये अमूल्य और एतदर्थ अनुपेक्षणीय सामग्री भरी पड़ी है। उसके अन्वेषण के लिये आवश्यकता है केवल जिज्ञासा की, अध्यवसायता की और आलोचनात्मक शक्ति की। आशा है इस महत्वपूर्ण विषय की ओर हिन्दी-जगत का ध्यान आकर्षित होगा। —लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी।

भारतीय दर्शन का इतिहास

लेखक—सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त एम. ए., पी. एच. डी.

प्रकाशक—केमब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, इंगलेण्ड।

भारतीय दर्शन-शास्त्रों के सम्बन्ध में अंग्रेजी में अबतक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उन सब में सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त की पुस्तक श्रेष्ठ जान पड़ती है। इसके कई कारण हैं—लेखक महाशय एक प्रकाण्ड भारतीय विद्वान् हैं जो पाश्चात्य और प्राच्य दार्शनिक विचारों से भलीभाँति परिचित हैं। आपने अपनी पुस्तक के विचारों का आधार संस्कृत के मूल ग्रन्थों पर रखा है और अंग्रेजी ग्रन्थों से बहुत कम काम लिया है, अतः आपकी पुस्तक में वे मन गढंत कल्पनाएं नहीं हैं जो पाश्चात्य विद्वानों की लिखी हुई इस प्रकार की पुस्तकों में मिलती हैं। मूल ग्रन्थों का आधार होने के कारण विद्वान् लेखक के लेख शुद्ध सुव्यवस्थित, सुबोधगम्य एवं सारगर्भित ही नहीं हैं, वरन गम्भीर, विद्वत्ता पूर्ण और मौलिक भी हैं। लेखक ने पुस्तक की भूमिका में पहले ही भलीभाँति प्रकट कर दिया है कि संस्कृत दर्शन-शास्त्रों के बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका अन्य किसी भाषा में ठीक अनुवाद नहीं हो सकता। जैसे तन्मात्रा, गुण, पुरुष, प्रकृति, सूक्ष्म एवं लिङ्गशरीर, आत्मा, अविद्या आदि। पाश्चात्य लेखक प्रायः ऐसे शब्दों के स्थान पर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं जो न तो पूर्ण सार्थक ही हैं और न ऋषि महर्षियों के गम्भीर सिद्धान्तों को ही पूर्ण रीति से समझाते हैं, वरन उल्टा भ्रम उत्पन्न करते हैं। इस आपत्ति को दूर करने के लिये लेखक ने संस्कृत के असली शब्दों का प्रयोग किया है और उनको भलीभाँति समझाने के लिये सविस्तर व्याख्या देने की भी पूर्ण चेष्टा की है।

प्रस्तुत पुस्तक में निम्न लिखित विषय विभाग हैः—

१. वेद, ब्राह्मण और उनके दार्शनिक विचार।
२. प्राचीन उपनिषद्।
३. भारतीय दर्शन-शास्त्रों की आलोचना।
४. बौद्ध दर्शन।
५. जैन दर्शन।
६. कपिल और पातञ्जल सांख्य-योग।
७. न्याय-वैशेषिक दर्शन।
८. मीमांसा दर्शन।
९. श्रीशंकराचार्य प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त।

लेखक ने प्रत्येक विषय का विवेचन इस प्रकार किया हैः—

१. प्रतिपाद्य विषय के आचार्यों का संक्षिप्त वृत्तांत।
२. विषय के साहित्य की आलोचना।
३. विषय-संबंधी मूल और मुख्य सिद्धान्त।
४. इन सिद्धान्तों की अन्य दर्शनीय सिद्धान्तों से तुलना।
५. विषय की अन्यगौण बातों की अपेक्षा उसके दार्शनिक विचारों की प्रधानता।
६. विषय से सम्बन्ध रखने वाले दार्शनिक विद्वानों का जन्मकाल तथा उनके ग्रन्थों के बनने का समय।

यह कहना होगा कि यह प्रणाली बड़ी उपयोगी है और विषय को पूर्ण रीति से समझाने के लिये उपयुक्त है। लेखक ने एक कार्य और बड़ी बुद्धिमत्ता का किया है। वह यह कि आपने आचार्यों के जन्मकाल तथा उनके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दार्शनिक विचारों के उत्पत्तिकाल के विषय में यथासम्भव कम लिखा है। जो सम्वत् और सन् दिये हैं वे भी डरते डरते दिये गये हैं, क्योंकि अभी तक कोई ऐसे प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं जिनके द्वारा हम इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी लिख सकें। सम्वत् और सन् के सम्बन्ध में जो कुछ खोज की गई है वह अधूरी और अपर्याप्त है। पाश्चात्य लेखक बहुत से प्राचीन ग्रन्थ कर्त्ताओं का समय अपनी कल्पना से गढ़ लेते हैं, जो अविश्वसनीय है। यथार्थ में यह विषय अब तक अन्धकार में है। यद्यपि लेखक ने जो सम्वत् और सन् दिये हैं वे बहुत जांच कर लिखे हैं, तथापि उन्हें निश्चित रूप से ठीक मान लेना असम्भव है। इन सम्वत् और सन् का उल्लेख बहुत कुछ पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार है, कोई मौलिक ग्रन्थों के आधार पर नहीं। पाश्चात्य विद्वानों की निरन्तर चेष्टा रही है कि भारतीय-साहित्य की प्राचीनता जहांतक हो घटाई जाय और उसकी रचना पर अन्य सभ्यताओं का प्रभाव बताया जाय, जिससे भारतियों को यह अभिमान न हो सके कि वे संसार भर की सब से प्राचीन सभ्य जाति हैं। हमें इन चालों से सचेत रहना चाहिये।

अब हम पुस्तक के विषयों का कुछ हाल लिखते हैं।

वेद

लेखक ने यह बात भलीभांति दिखाई है कि वेदों में उन सब दार्शनिक विचारों और मतों के बीज हैं, जो पीछे पूर्णरूप से विकासित हुए हैं। आप लिखते हैं—वेदों में अनेक ईश्वरवाद, क्रमानुसार प्रत्येक देवताप्रधानवाद, प्रकृति-वाद, एकईश्वरवाद, द्वैतअद्वैतवाद आदि सभी सिद्धान्तों के बीज हैं और अन्त में एकईश्वरवाद की प्रधानता है। आप लिखते हैं कि यद्यपि वेदों में ब्रह्म शब्द का वह अर्थ नहीं मिलता, जो पीछे से अद्वैतवाद के ग्रन्थों में प्रति-पादित है, तथापि शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म का अर्थ नितान्त गम्भीर और सार गर्भित है—ब्रह्म वह सर्वोपरि तत्व है, जो सब देवताओं का सञ्चालक और उनकी अन्तिम प्रधान शक्ति है। लेखक ने लिखा है "आदि में ब्रह्म ही था। उसी से सब देवता उत्पन्न हुए। उसी ने देवताओं को उच्च लोकों में स्थान दिया। अग्नि को पृथ्वी पर रखा, वायु को अन्तरिक्ष में, सूर्य को आकाश में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और इन सब देवताओं के लोकों के ऊपर स्वयं ब्रह्म रहा। जब ब्रह्म ने यह विचार किया कि मैं नीचे के लोकों में कैसे उतरूं तो उसने नाम रूप को अपना साधन बनाया। नामरूप के द्वारा वह नीचे के लोकों में उतरा। जहां तक नामरूप की गति है, जहां तक नामरूप का फैलाव है, वहीं तक संसार है। ये ही ब्रह्म की दोनों शक्तियां हैं; जो इन्हें जानता है, वह स्वयं महान्शक्ति हो जाता है।" एक दूसरे स्थल में कहा है—"ब्रह्म विश्व की अन्तिम शक्ति है। वही उसका मूलाधार तत्व है। वही प्रजापति है, वही पुरुष है, वही प्राण है।" वेदों में यज्ञ-विधान मुख्य है। यह कर्म सिद्धान्त का मार्मिक अंग है। यद्यपि जीव के आवागमन के विषय में संहिता भाग में कोई स्पष्ट ऋचा नहीं है, तथापि यह सिद्धान्त शतपथ ब्राह्मण में सर्वथा स्पष्ट रूप से वर्णित है। वेदों में परलोक का पूर्ण वर्णन है और जीव-आत्मा का उल्लेख भी स्पष्ट है।

उपनिषद्

वेदों में कर्म मार्ग प्रधान है और उपनिषदों में ज्ञान मार्ग। उपनिषदों में यज्ञ करने कराने का उपदेश नहीं है। उनमें उस वास्तविक तत्व की खोज है, जिसकी प्राप्ति से मुक्ति होती है। चाहे जिस उपनिषद् को पढ़िये उसमें प्रधान विषय आत्मा का विवेचन और गवेषण ही मिलेगा। उपनिषदों के ब्रह्मज्ञान के विषय में लेखक ने एक बड़े मार्के की बात कही है। कई उपनिषदों में इस बात का उल्लेख है कि क्षत्रिय राजा ब्रह्मज्ञान बिषय के पारदर्शी थे। उनके पास जाकर कई ब्राह्मणों ने ब्रह्मज्ञान सीखा है। यह बात बालाकिगार्ग्य और अजात-शत्रु, श्वेतकेतु और प्रवाहन, जैबलि तथा अरुणि और अश्वपतिकैकय की कथाओं से सिद्ध होजाता है। इस आधार पर कुछ प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखकों ने जैसे प्रो० गार्व विन्टर्निज आदि ने लिखा है कि ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान का पता नहीं था, वे केवल यज्ञादि विषयों के जानकार थे। ब्रह्मज्ञान के आविष्कर्ता क्षत्रिय राजा हैं। इन्हों ने ही इस ज्ञान को ब्राह्मणों को सिखाया है। हमारे लेखक लिखते हैं कि यह कल्पना निराधार है। यदि दो-चार ब्राह्मणों ने इस ज्ञान की प्राप्ति क्षत्रियों से की है तो सहस्रों क्षत्रियों ने इसे ब्राह्मणोंसे सीखा है। दो-एक कथाएं उपनिषदों में आजाने से यह सर्वव्यापी नियम नहीं बन सकता कि ब्रह्मज्ञान के सिखाने वाले क्षत्रिय राजा ही थे। उपनिषदों के समय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में वर्णभेद विषयक बन्धनों की ऐसी कठिनाई नहीं थी। प्रत्येक नर-नारी ब्रह्मज्ञान सीखने का अधिकारी था। इससे उल्टा यह ज्ञात होता है कि उस समय इस विद्या के सीखने और प्रचार करने में सभी जातियों के स्त्री पुरुष आपस में स्पर्धा रखते थे।

लेखक यह भी लिखते हैं कि वेदों में विश्व से पृथक देवता देवियों तथा ईश्वर की उपासना का उल्लेख है। उपनिषदों में अपनी ही आत्मा को सर्वोपरि माना है। वही ब्रह्म है, वही ईश्वर है, सब कुछ वही है; क्योंकि वही सब विश्व की अन्तरात्मा है। उपनिषदों की दृष्टि से कोई बाहरी संसार रचयिता नहीं है। यहां उपासक और उपास्य एक ही हैं यहां दूसरों के लिये प्रार्थनाएँ नहीं हैं। यहां आत्मज्ञान ही सब कुछ है। वेदों में ईश्वर की खोज स्थूल पदार्थों द्वारा की गई है और उपनिषदों में यह खोज अन्तरात्मा-आत्मा द्वारा।

उपनिषदों का सार अद्वैतवाद है, जो ब्रह्म और आत्मा को एक बतलाता है। आत्मा ऊपरी उपाधियों से ढकी हुई है। उसके ऊपर आनन्द-मयकोश, विज्ञानमयकोश, मनोमयकोश, प्राणमयकोश और अन्नमयकोश है। इन्हीं के भीतर सूक्ष्म शरीर है, जो व्यवहारिक जीव है। आत्मा इनके परे है और यह आत्मा और ब्रह्म एक हैं।

स्थूल संसार जो हमें दिखाई देता है, वास्तव में सत्य नहीं है। वह माया का प्रपञ्च है और माया की सत्ता व्यवहारिक है, वास्तविक नहीं। यह हम अवश्य कह सकते हैं कि यह सत्ता उस सत्ता से, जो हम स्वप्न दृश्यों में तथा मृगतृष्णा आदि दृश्यों में देखते हैं, भिन्न है। स्वप्न दृश्य और मृगतृष्णा आदि की सत्ता प्रातभासिक है, जो व्यवहारिक सत्ता से नीचे दर्जे की है। वास्तविक सत्ता केवल ब्रह्म की है और यह सत्ता कभी और किसी प्रकार भी नष्ट नहीं हो सकती।

छान्दोग्य उपनिषद में जीव के आवागमन का भी वर्णन है। संसार प्रपञ्च से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। जब आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो जाय और सब संसार असत्य दिखाई देने लगे, तब मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। शरीर छूटने पर वह केवल आत्मरूप ही रह जाता है। सब बाहरी उपाधियां जाती रहती हैं, यही मुक्ति है। उपनिषदों में अद्वैतवाद को प्रधान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बतलाते हुए लेखक ने एक दो प्रमाण ऐसे भी दिये हैं जिनसे द्वैतवाद भी सिद्ध होता है जैसे—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

मुण्डकोपनिषत ३, (१) तथा श्वेताः ४ (६)

अर्थात् दो मित्र पक्षी एक वृक्ष पर ही रहते हैं। एक तो फल खाता है और दूसरा फल नहीं खाता, केवल देखता रहता है।

यद्यपि इस प्रमाण से उपनिषदों में द्वैतवाद का बीज भी मिलता है, तथापि इनमें प्रधान सिद्धान्त अद्वैतवाद ही है।

दर्शन-शास्त्र विभाग

इस विषय के प्रतिपादन के पश्चात् लेखक ने यह बतलाया है कि भारतीय विचारों के अनुसार दर्शन शास्त्र दो भागों में विभक्त है और ये दो भाग हैं-नास्तिक और आस्तिक। नास्तिक दर्शन शास्त्रों में तीन शास्त्र हैं— बौद्ध, जैन और चार्वाक्।

आस्तिक दर्शन शास्त्र छः हैं—सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय और वैशेषक।

समान सिद्धान्त

यह बात विचारणीय है कि चार्वाक मत के सिवा नास्तिक और आस्तिक दोनों प्रकार के दर्शन शास्त्रों में निम्न लिखित बातें समान हैं:—

१. कर्म सिद्धान्त।
२. जीवका पुनर्जन्म और आवागमन।
३. मुक्ति।
४. जीवात्मा।
५. सभी दार्शनिक मतों का लक्ष्य परलोक है और इस लोक की ओर कुछ न कुछ अरुचि और उदासीनता है। इसकी मात्रा यद्यपि सब मतों में समान नहीं है, पर यह किसी न किसी मात्रा में विद्यमान सभी में है।
६. अन्त में सभी मतों में आत्मानन्द को मुख्य मानते हुए मोक्ष का लक्ष्य प्रधान बतलाया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७. जीवन को धार्मिक बनाने के लिऐ सभी मतों के साधन बहुत कुछ मिलते हुए हैं। आत्म संयम, अहिंसा, इन्द्रियदमन सभी मतों में माने गये हैं। योग साधन भी सभी में बहुत कुछ एक से हैं। भक्ति मार्ग की प्रधानता पीछे से वैष्णव सम्प्रदायों में हुई है।

हम लेखक की पिछली बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। यद्यपि भक्ति मार्ग सिद्धान्त का प्रचार आधुनिक वैष्णव सम्प्रदायों ने बहुत कुछ किया है, पर यह सिद्धान्त है अत्यन्त प्राचीन। ऋग्वेद की प्रार्थनाओं में उपासना सिद्धान्त का जन्म है। पञ्चरात्र मत अत्यन्त प्राचीन है। महाभारत में भक्ति मार्ग के अनेक प्रमाण हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति मार्ग भी एक प्रधान अङ्ग है। हमारे सभी पुराण भक्ति मार्ग के सिद्धान्त से परिमार्जित हैं। यह कहना कि भक्ति मार्ग आधुनिक वैष्णव सम्प्रदायों में ही उच्चस्थान को प्राप्त कर सका है, एक भारी ऐतिहासिक भूल है। यदि यह बात होती तो वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय में भागवत मत खण्डन करने की क्या आवश्यकता थी?

चार्वाक

लेखक ने चार्वाक मत का भी सविस्तर वर्णन किया है। इसमत के विषय में अब तक बहुत कम पता है। आप लिखते हैं कि चार्वाकों के कई मत थे, जिनमें मुख्य दो मत थे धूर्त चार्वाक और सुशिक्षित चार्वाक।

धूर्त चार्वाकों का मत था कि पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि तत्वों के सिवा और कुछ नहीं है और शरीर परमाणुओं के मेल से बना है। न आत्मा है, न जीव है, न पुण्य है, न पाप है।

सुशिक्षित चार्वाक चार तत्वों को तो मानते थे, पर कहते थे कि शरीर से पृथक जीव भी है, जो शरीर के साथ ही साथ नष्ट हो जाता है।

दोनों मतों के चार्वाक न वेद को मानते थे और न किसी अन्य धार्मिक पुस्तक को। वे पुनर्जन्म तथा कर्मफलादि किसी को नहीं मानते थे। वे कहते थे—जो कुछ है वह यही जीवन है; मरने के पश्चात् कुछ भी नहीं है। जीवन को सुख मय बनाना उनका परमोद्देश था। वे प्रत्यक्ष प्रमाण के सिवा और किसी प्रमाण को नहीं मानते थे। चार्वाक शब्द चर्व धातु से बना है, जिसका अर्थ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

खाना है। ये खाने पीने और भोग करने में ही लगे रहते थे इससे ये चार्वाक कहलाये। चार्वाकों का प्रधान ग्रन्थ बार्हस्पत्यसूत्र है जिसका कुछ अंश अब भी मिलता है। इनके गुरू बृहस्पति थे।

अन्य जड़वादी मत

चार्वाकों के सिवा एक मत और था, जिसका नाम था अजीवक। इसका प्रधान नेता मखलि गोशाल था। ये लोग नितान्त प्रारब्धवादी थे और कहते थे कि मनुष्य को पाप और पुण्य करने की शक्ति ही नहीं है और न वह अपने कर्मों का ही उत्तरदाता है। अपने तथा दूसरे के पुरुषार्थ पर कुछ भी निर्भर नहीं है। जो कुछ है, या जो कुछ होता है, वह प्रारब्धवश है। प्रारब्ध के सिवा और कुछ है ही नहीं। एक और मत भी था जिसका नेता अजित-केशकम्बलि था। ये लोग कहते थे कि अच्छे-बुरे कर्मों का कुछ फल नहीं होता। न परलोक सत्य है और न यह लोक। इस जीवन पर पहले जन्मों तथा माता-पिताओं का कुछ भी प्रभाव नहीं है। हम जो कुछ भी करें वह हमें मृत्यु-समय सर्वथा नष्ट होने से नहीं बचा सकता।

बौद्धधर्म

लेखक लिखते हैं कि जिस समय वैदिक कर्मकाण्ड, उपनिषदों का अद्वैतवाद तथा आत्मवाद, सांख्य-योग के अव्यवस्थित सिद्धान्त और नास्तिकों का जड़वाद साथ साथ प्रचलित थे और दार्शनिकमतों में बड़ी खींचा-तानी थी, उस समय ईसा से लगभग ५६० वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। बौद्धमत का भारतीय दार्शनिक विचारों पर बड़ा असर पड़ा।

लेखक ने बौद्ध-दार्शनिक विचारों को बड़ी कुशलता से लिखा है और जो बातें पहले किसी आधुनिक ग्रन्थ में स्पष्ट और शुद्ध लिखी नहीं मिलती, उन्हें स्पष्ट करने में उन्होंने समुचित प्रयत्न किया है।

बौद्धधर्म का साहित्य तीन भागों में विभक्त है—१ सूत्र, २ विनय और ३ अभिधर्म। सूत्रों में धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन है, विनय में भिक्षुकों के रहने के नियम हैं और अभिधर्म में सिद्धान्त विषयक स्पष्टीकरण है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बौद्धधर्म भली भांति तभी समझ में आ सकता है जब बौद्धधर्म के मुख्य दार्शनिक मतों का ज्ञान हो जाय। ये मत बड़े मार्के के हैं और भारतीय दार्शनिक विचारों में उच्चस्थान रखते हैं। योरप में जो ऊंचे ढंग के दार्शनिक मत निकले हैं वे इनकी छाया मात्र हैं।

बौद्ध—दार्शनिक मत

बौद्ध-दार्शनिक मतों में चार मुख्य हैं:—

१ सौत्रान्तिक } (सर्वास्तिवादी)
२ वैभाषिक }
३ योगाचार (विज्ञानवादी)
४ माध्यमिक (शून्यवादी)

यह लिख देना आवश्यक है कि हिन्दू-ग्रन्थों में जहाँ बौद्धों का वर्णन आया है वह प्रायः सर्वास्तिवादियों का ही है।

सौत्रान्तिकों का मत है कि पांच स्कन्धों के सिवा आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है। यह स्कन्धसमूह ही जीवका कार्य करता है और आवागमन भी यही कराता है। बाहरी संसार के पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष न होकर अनुमान प्रमाण से प्राप्त होता है।

वैभाषिकों का मत है कि सांसारिक वस्तुओं की सत्ता चार क्षण के लिये है—पहला क्षण वह है जब वस्तु की उत्पत्ति होती है, दूसरा क्षण उसका स्थिति काल है, तीसरा क्षण उसके क्षीण होने का समय है और चौथा क्षण है उसका अत्यान्त विध्वंस का काल। ये चारों शक्तियां अक्षरतत्व से मिलकर जीवन की क्षणभंगुर घटनाओं को प्रकट करती हैं। आत्मा या जीव पुद्गल है और उसके येही लक्षण हैं। वैभाषिक लोग संसार की वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणगत मानते हैं, अर्थात् इस विषय में उनका मत सौत्रान्तिकों के विपरीत है।

योगाचार अथवा विज्ञानवादियों का मत है कि ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। किसी वस्तु में सत्यता का लेश मात्र भी अंश नहीं है; प्रत्येक वस्तु स्वप्नवत् तथा इन्द्रजाल के समान असत्य है। इस मत के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धुरन्धर लेखक और प्रचारक अश्वघोष, असङ्ग, और वसुबन्धु थे।

माध्यमिक अथवा शून्यवादियों का मत था कि सब कुछ शून्य है। ये लोग ज्ञान तक को शून्य मानते थे। इनके विचार से संसार, मन, आत्मा सभी शून्य हैं। ज्ञान को शून्य मानने के कारण ये विज्ञानवादियों से एक दर्जे आगे बढ़े हुए थे। इस मत का सर्वश्रेष्ठ लेखक और उपदेशक नागार्जुन था, जिसका समय ईसा से १०० वर्ष पीछे का बताया जाता है। इस मत के अन्य प्रभावशाली लेखक आर्य्यदेव, कुमारजीव, बुद्धपालित और चन्द्रकीर्त्ति थे।

बौद्धधर्म की दो प्रसिद्ध शाखाएँ हैं, एक हीनयान और दूसरी महायान। महात्मा बुद्ध के समय दो शाखाएँ नहीं थी। ईसा से ४०० वर्ष पहले महासंघ नाम का एक पृथक् विभाग हो गया और इसी विभाग में से महायान सम्प्रदाय निकला। इस शाखा का विकास-समय ईसा से १०० वर्ष पहले से ४०० वर्ष पीछे तक माना जाता है। हीनयान शाखा को सनातनी बौद्ध कहें तो अनुचित न होगा। पूर्वोक्त चार दार्शनिकमतों में सौत्रान्तिक और वैभाषिक हीनयान शाखा में हैं और माध्यमिक (शून्यवादी) एवं योगाचार (विज्ञानवादी) महायान में हैं। हीनयान शाखा का अर्थ है—वह शाखा जिसका उद्देश या लक्ष्य हीन अथवा संकीर्ण है और महायान वह शाखा है जिसका उद्देश उच्च एवं व्यापक है। हीनयान संप्रदाय के अनुयायियों का उद्देश अपनी मुक्ति प्राप्त करना है, जो तीन जन्मों में निरन्तर परिश्रम और प्रयत्न करने से प्राप्त हो सकती है। महायान मतावलंबियों का उद्देश और लक्ष्य अपनी मुक्ति प्राप्त करना ही नहीं है, वरन अनन्त जन्मजन्मान्तरों की अवधि पर्यन्त सभी जीवों को मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देने की निरन्तर चेष्टा करते रहना है। हीनयान और महायान शाखाओं में दार्शनिक दृष्टि से यह अन्तर है कि महायान मत के अनुयायी यह मानते हैं कि सब वस्तुएँ असार एवं अव्यवस्थित ढंग की हैं तथा मूलतः शून्य हैं और हीनयान संप्रदाय को मानने वाले समस्त वस्तुओं को केवल क्षर और क्षणभंगुर मानते हैं, पर इसके आगे नहीं बढ़ते।

जैनधर्म

अब हम जैनधर्म का कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। जैनधर्म के प्रति-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पादन में पाश्चात्य और प्राच्य सभी लेखकों ने प्रायः भूलें की हैं। किसी ने उसे बौद्धधर्म की एक शाखा बतलाई है, किसी ने उसे स्वतंत्र धर्म मानते हुए उसकी उत्पत्ति महावीर स्वामी से बतलाई है और किसी ने उसे पार्श्व-नाथ से पहले का धर्म ही नहीं बताया। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने ऐसी कोई भूल नहीं की है। आप इसे एक प्राचीन धर्म बताते हैं। आप कहते हैं कि इस धर्म के पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव थे और पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थङ्कर थे, जो महावीर स्वामी से २५० वर्ष पहले सिद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे। महावीर स्वामी के विषय में लेखक ने लिखा है कि ये क्षत्रिय जाति के थे। इनके माता-पिता का नाम त्रिशला और सिद्धार्थ था और यह वैशालि नगर के रहने वाले थे। यह स्थान पटने से २७ मील उत्तर में है और अब इसका नाम बेसर है। महावीर स्वामी का विवाह यशोदा नाम की कुमारी से हुआ था जिससे एक पुत्री का जन्म भी हुआ। जब इनकी अवस्था ३० वर्ष की हुई उस समय इनके माता-पिता का देहान्त हुआ। ये अपने भाई नन्दिवर्धन की आज्ञा लेकर साधु हो गये। १२ वर्ष तप एवं ध्यान करने के पश्चात् इन्हें केवल-ज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके पीछे ४२ वर्ष तक ये उपदेश करते रहे और इन्होंने बुद्ध से कुछ वर्ष पहले अर्थात् ईसा से लगभग ४८० वर्ष पहले मोक्ष प्राप्ति की।

लेखक ने महावीर स्वामी के समय का जो निर्णय किया है वह ठीक नहीं जान पड़ता। इस समय अर्थात् विक्रम सम्वत् १९८० में वीर सम्वत् २४५० है। इस हिसाब से महावीर स्वामी का निर्वाण-काल ईसा से ४७० वर्ष पहले होता है। इनका जन्मकाल ईसा से ५४२ वर्ष पहले का है। इनकी पूर्ण आयु ७२ वर्ष की थी। जैनों के श्वेताम्बर और दिगम्बर शाखा-ओं के विषय में लेखक लिखते हैं कि श्वेताम्बरों के मतानुसार दिगम्बरों की उत्पत्ति शिवभूति से हुई है जिसका समय ईसा से ८३ वर्ष पीछे का है। साथ ही आप कहते हैं कि श्वेताम्बरों में परस्पर कुछ मतभेद हो गया था इसी कारण इस शाखा की उत्पत्ति हुई। आप यह भी कहते हैं कि इसके पूर्व भी इस प्रकार के कई मतभेद हो चुके थे। दिगम्बर इस बात को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं मानते। उनका कथन है कि हम ही मूल सम्प्रदाय के हैं और जो कुछ हम करते हैं वही जैनसिद्धान्तों के अनुकूल है। वे यह भी कहते हैं कि महावीर स्वामी से पीछे भद्रबाहु मुनि के समय में श्वेताम्बरों का संप्रदाय अर्द्धफालक नामक फिरके से निकला है और इसका आरंभ काल ईसा से ८० वर्ष पीछे का है। इसके पश्चात् जैन धर्मावलम्बियों में छोटी छोटी बातों में मत-भेद होने के कारण ८४ फिरके बन गये जिन्हे गच्छ कहते हैं। इनमें 'खरतर-गच्छ' सब से प्रसिद्ध है। श्वेताम्बरों में मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी दो भेद हैं जिन्हें लेखक ने नहीं लिखा है। जैनों का धार्मिकसाहित्य दो प्रकार का है-पूर्व और अङ्ग। पूर्व साहित्य नष्ट हो गया है, किन्तु ११ अङ्ग अभी भी उपलब्ध हैं। इनके सिवा १२ उपाङ्ग, १०प्रकीर्ण, ६ छेदसूत्र, नान्दी और अनुयोगद्वार एवं ४ मूलसूत्र भी हैं। दिगम्बर कहते हैं कि इन नामों के असली ग्रन्थ खो गये हैं, जो मिलते हैं वे पीछे के बनाये हुए हैं। असली ग्रन्थ अर्द्धमागधी में थे, परन्तु शनैः शनैः प्राकृत भाषा में हो गये। पीछे के लिखे ग्रन्थ महाराष्ट्री में हैं। जैनों का साहित्य बड़ा विस्तृत है और उसमें सभी विषय के ग्रन्थ हैं।

जैनों का अनेकान्तवाद सिद्धान्त बड़े महत्व का है। इनका कथन है कि वस्तुओं के अनेक रूप होते हैं, यह कहना कि कोई विशेष रूप ही मुख्य है या एक यही रूप है, भूल है। कल्पना कीजिये,एक स्वर्णपात्र है, एक रूप में वह द्रव्य है, किन्तु आकाश और काल भी द्रव्य है। यह पात्र इस प्रकार का द्रव्य नहीं है, अर्थात् यह अपने परमाणुओं का द्रव्य है और दूसरे परमाणुओं की दृष्टि से यह द्रव्य नहीं है। यह अपने नामरूप से पात्र है और दूसरों के नामरूपों से पात्र नहीं है। गुणनामरूपादि दृष्टियों से यह पात्र देखा जाय तो इसके हजारों लक्षण हैं भी और नहीं भी हैं। इसलिये किसी वस्तु के लिये यह कहना कि वह ऐसी ही है और ऐसी नहीं है, भूल है। इस प्रकरण को जैन विद्वानों ने अत्यन्त विद्वत्ता और कुशाग्रबुद्धिमत्ता से लिखा है। इनका स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) तर्क आर्यतर्क तथा बौद्धतर्क शास्त्र से भिन्न है। यह दोनों के बीच का है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कार्यकारण विवेचन

वेदान्तदार्शनिक कहते हैं कि कारण सत्य है और कार्य मिथ्या है। सांख्यमतावलम्बी कहते हैं कि जो कारण है वही कार्य है, दोनों में भेद नहीं है। बौद्ध विद्वानों का मत है कि कारण असत्य है और दृश्यमान् कार्यों का ही ज्ञान हो सकता है; जो कुछ हम देखते हैं वह गुण या गुणसमूह है, वह वस्तु जिसमें ये गुण रखे हैं, अज्ञात है, यथार्थ में है ही नहीं, क्योंकि हमें उसका ज्ञान ही नहीं हो सकता। जैनों का कथन है कि यह कहना कि कारण सत्य है और कार्य मिथ्या है अथवा कारण मिथ्या है और परिवर्त्तनशील कार्य दृश्यमान् है, ठीक नहीं है। इन दोनों का तर्क अनुभव विपरीत है। दोनों में कुछ कुछ सत्य का अंश अवश्य है, परन्तु अनुभव से सिद्ध है कि सब परिवर्तनों में तीन बातें होती हैं (१) कुछ गुणों के परमाणु अपरिवर्तित रहते हैं, (२) कुछ नये गुण उत्पन्न हो जाते हैं और (३) कुछ पुराने गुण नष्ट हो जाते हैं। यह कहना सत्य है कि वस्तुओं के गुण प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, किन्तु सब गुण नहीं बदलते। कल्पना कीजिये जब मिट्टी का घट बनता है तब मिट्टी के ढेले का रूप नष्ट हो जाता है। उसकी जगह यद्यपि घट का रूप बनता है, परन्तु मिट्टी ज्यों की त्यों स्थायी रहती है। अर्थात् नई वस्तु के उत्पन्न होने से कुछ पुराने गुण जाते रहते हैं, कुछ नये गुण आजाते हैं और कुछ अंश में वह वस्तु अपरिवर्तित रहती है। जो अंश अपरिवर्तित रहता है वही स्थायी और अक्षर कहा जाता है। उसके दूसरे भाग परिवर्तित हुआ करते हैं। जिसे हम सत्य वस्तु कहते हैं वह न तो ऐसी है कि वह बिलकुल बदल ही जावे और न ऐसी है कि क्षण प्रतिक्षण बदलने वाली ही हो। उसमें दोनों बातें रहती हैं। जीव में कुछ नये गुणों की उत्पत्ति भी होती है और कुछ पुराने गुणों का व्यय भी। इस प्रकार जैन-सिद्धान्त, वेदान्त और बौद्ध सिद्धान्तों की अन्तिम सीमाओं के बीच में है।

बौद्धों के मतानुसार सब दृश्यमान् पदार्थ ज्ञान के रूप मात्र हैं, वास्तव में कुछ नहीं है। जैनमतानुसार बाहरी पदार्थ सत्य हैं और उनका प्रत्यक्षज्ञान इन्द्रियों-द्वारा आत्मा को होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कल्पना कीजिये—मैं एक गुलाब का पुष्प देख रहा हूं। पुष्प देखने के पहले पुष्प का ज्ञान मेरे भीतर था, किन्तु वह गुप्तरूप में था और अपने आप प्रकट नहीं हो सकता था। पुष्प की ओर देखने से पुष्प में और मुझ में ऐसी योग्यता आगई कि पुष्प दिखाई देने लगा और जो परदा मेरे पुष्प-संबन्धी ज्ञान पर पड़ा हुआ था, वह दूर हो गया। जैनों के मतानुसार सब वस्तुएं जीव और अजीव दो समूहों में विभक्त हैं। आत्मा शरीर से पृथक् है और वह ज्ञान स्वरूप है। जीवों के प्रकार, उनके लक्षण तथा अजीव के लक्षण एवं इन दोनों तत्वों का सविस्तर विवरण ग्रन्थकार ने बड़ी विद्वत्ता और सावधानी से किया है। हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार ग्रन्थकार ने यह विवरण किया है उसमें किसी जैन-विद्वान् को विरोध करने का कोई कारण नहीं है।

अजीव सात भागों में विभक्त हैं अर्थात् पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुण्य और पाप। इसी प्रकार जीव के पृथ्वीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय विभाग किये गये हैं। इन सब की सन्तोषदायक व्याख्या की गई है और जैन योगसाधनों का भी पूरा हाल दिया गया है। जीव, अजीव, आश्रव, संवर, बन्ध, पुण्य, पाप, निर्जरा और मोक्ष—इन सब तत्वों का भी स्पष्ट और शुद्ध विवरण किया गया है।

सांख्य-योग

इसके आगे लेखक ने सांख्य-योग का विवेचन किया है। पुस्तक का यह स्थल बड़े मार्के का है। इस प्रकरण में आपने सांख्य का विकासक्रम बतलाया है। आपका मत है कि सांख्य के इन विचारों के अंकुर उपनिषदों में भी पाये जाते हैं। आपका यह भी कथन सत्य ही है कि चरक ने भी सांख्य का विवेचन किया है। अब तक सांख्यदर्शनसंबन्धी जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें चरक के विचारों का कुछ उल्लेख नहीं है, इसलिये लेखक की यह खोज नई और प्रशंसनीय है। चरक के मत से छः तत्व हैं। पांचों तत्व-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तो हैं ही, छठा चेतना है, जिसे पुरुष भी कहते हैं। एक दूसरे प्रकार से इनकी संख्या चौबीस है अर्थात् दश इन्द्रियाँ, मन, पांच इन्द्रियार्थ और आठ प्रकार की प्रकृति अर्थात् प्रकृति, महत्, अहंकार और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पञ्चभूत। चरक ने पंचतन्मात्राओं का उल्लेख नहीं किया है। उसने प्रकृति के अव्यक्त भाग को पुरुष माना है, इसलिये उसे पच्चीसवां तत्व नहीं बनाया है। अव्यक्त और चेतना एक ही बात है।

चरक का मत पञ्चशिखा के मत से मिलता है। यह आसुरि का शिष्य था और आसुरि कपिल का शिष्य था। सांख्यवादियों के प्राचीन काल में दो विभाग थे—मौलिक सांख्य और उत्तर सांख्य। ऊपर जिस सांख्यमत का उल्लेख किया गया है वह मौलिक सांख्य है।

महाभारत में सांख्यवादियों के तीन मतों का उल्लेख है—

(१) २४ तत्वों को मानने वाले। जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

(२) २५ तत्वों को मानने वाले। यह प्रचलित सांख्यमत है।

(३) २६ तत्वों को मानने वाले। इनका २६वां तत्व परमेश्वर है, जो पुरुष के सिवा है। यह मत योगदर्शन में माना गया है।

पञ्चशिखा प्रचलित सांख्य जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है प्राचीन सांख्य है। ईश्वरकृष्ण-प्रतिपादित सांख्य पीछे से हुआ है। ईश्वरकृष्ण का समय ईसा से १०० वर्ष पीछे का बताया जाता है। लोगों की धारणा है कि इन्हीं का नाम विन्ध्यवासिन् है, जिन्हों ने प्राचीन सांख्य में परिवर्तन किया है। प्राचीन सांख्यग्रन्थों में षष्टितन्त्र शास्त्र है जो दो भागों में है—एक भाग में ३२ अध्याय हैं और दूसरे में २८ अध्याय। यह सांख्यमत ईश्वरवादी था। विज्ञानभिक्षु जो सांख्यमत का सब से श्रेष्ठ और प्रतिभाशाली भाष्यकार है, कहता है कि आदि में सांख्यमत ईश्वरवादी था; पीछे यह निरीश्वरवादी होगया, क्योंकि संसाररचना में ईश्वर की कोई आवश्यकता न दिखाई पड़ी। ऐसा मालूम होता है कि कपिल मुनि ने सांख्य पर जो ग्रन्थ लिखा था उसमें ईश्वरवादी सांख्य का ही प्रतिपादन था और उसी के आधार पर षष्टितन्त्र शास्त्र लिखा गया था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि पहले सांख्यमत ईश्वरवादी था, जिसके आधार पर योगशास्त्र की रचना है, फिर उसे पंचशिखा ने निरीश्वरवादी कर दिया और अन्त में इस निरीश्वरवादी सांख्य का वह रूप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो गया जो हमें इस समय मिलता है। विज्ञानभिक्षु ने, जो ईसा की छठी शताब्दि में हुआ था, गुणों का विवेचन नये ही प्रकार से किया है और इस से सांख्यशास्त्र का और भी महत्व बढ़ गया है।

प्रचलित सांख्यमत का सब में पुराना ग्रन्थ सांख्यकारिका है, इन्हीं पर सांख्यसूत्र बने हुये कहे जाते हैं। विज्ञानभिक्षु के भाष्य का झुकाव ईश्वर-वाद की ओर है। सांख्यशास्त्र का दूसरा नामी भाष्यकार वाचस्पतिमिश्र है।

योगदर्शन

जैसे रथ में जुते घोड़ों को रोकना योग है वैसे ही इन्द्रियों को रोक कर वश में लाना योग है। यही योग का अर्थ है। योगसाधनों की प्राचीनता में कोई संशय नहीं है। मैत्रायणी, श्वेताश्वतर और कठ नामक उपनिषदों में योग दर्शन के विचार मिलते हैं और इन्हीं तीनों उपनिषदों में सांख्यमत-सम्बन्धी उल्लेख भी मिलते हैं। योगतत्वउपनिषद् में चार प्रकार के योग लिखे हैं—मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग।

वाचस्पति और विज्ञानभिक्षु का मत है कि पतञ्जलि योगमत के संस्थापक न होकर उसके सम्पादक थे। उन्होंने योगसिद्धान्तों को भिन्न भिन्न ग्रन्थों से चुनकर एक क्रमवद्ध ग्रन्थ में रख दिया है।

प्राचीन योगमत के, जो मैत्रायणी उपनिषद् में मिलता है, ६ अंग थे—प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि। पीछे से योग में दो अङ्ग और बढ़ गये अर्थात् यम और नियम और तर्क का स्थान 'आसन' को मिल गया। इस प्रकार वर्तमान योग के ८ अङ्ग हो गये।

गुण शब्द सांख्य और योग-दोनों दर्शनों में आया है। लेखक महाशय ने गुण के तीन अर्थ बताये हैं-१ विशेषण, लक्षणादि, २ रस्सी ३ मुख्य नहीं वरन गौण।

आप सत्वगुण को चेतनाशक्ति का द्योतक बताते हैं, रज को संचालक, प्रवर्तक एवं क्रियात्मक और तम को स्थूलता और निश्चलता का द्योतक। यह ध्यान देने योग्य बात है कि संसार रचना में प्रधान कारण तीन ही हैं—चेतना, क्रिया और स्थूलता। जब ये तीनों मिल जाती हैं तो संसार की रचना होने लगती है।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. ....

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि सांख्यमत में सत्कार्यवाद माना गया है अर्थात् कार्य प्रकट होने के पहले भी कारण में सत् रुप था जैसे तेल निकलने के पहले भी तिली में रहता है। बौद्धों का मत असत्कार्यवाद है अर्थात् वे कहते हैं कि कोई कारण है ही नहीं जिससे कार्य उत्पन्न हो। प्रत्येक परिवर्तन नया होता है। जैन कहते हैं कि एक दृष्टि से सत्कार्यवाद ठीक है और दूसरी से असत्कार्यवाद। वेदान्ती कारण को सत् मानते हैं और कार्य को असत्। जैन कहते हैं ब्रह्म जो जगत् का कारण है, सत् है और जगत् जो उसका कार्य है, असत् है। सांख्यमत परिणामवादी है और वेदान्त विवर्तवादी।

सांख्यमत निरीश्वरवादी है और योगमत ईश्वरवादी। लेखक महाशय सांख्य और योग विचारों की ही आपस में तुलना नहीं करते गये हैं, वरन उनकी तुलना बौद्धमत के सिद्धान्तों से भी करते गये हैं जिससे ये विचार स्पष्ट और बोधगम्य हो जांय।

न्याय—वैशेषिक

सांख्य-योग के पश्चात् लेखक ने न्याय-वैशेषिकदर्शनों की सारग-र्भित आलोचना की है और इनके सिद्धान्तों की बौद्ध, जैन, सांख्य और योग के दार्शनिक विचारों से तुलना की है। इस तुलनात्मक आलोचना में लेखक ने अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

हम न्याय के विषय में इतना ही कहना चाहते हैं कि लेखक ने नव्य-न्याय के विषय में जो कुछ लिखा है बहुत थोड़ा है। आप नव्यन्याय की उत्पत्ति १२ वीं शताब्दि में मानते हैं। इसके जन्मदाता गङ्गेश उपाध्याय मिथिलानिवासी हैं, जिन्होंने अपना ग्रन्थ न्याय के चार प्रमाणों पर लिखा था। इसके बाद बहुत से पंडितों ने इस ग्रन्थ पर भाष्य और स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे और इस विषय में बड़ी उन्नति की।

प्रस्तुत ग्रन्थ जैसे महत्व का है उसमें हम नव्यन्याय के ऊपर सविस्तर आलोचना की आशा रखते थे, पर लेखक महाशय ने यह विषय एक पृष्ठ में ही लिखकर समाप्त कर दिया। यह इस ग्रन्थ की न्यूनता है। आशा है दूसरे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्करण में यह दूर हो जायगी।

पूर्वमीमांसा

पूर्वमीमांसा के विषय में लेखक महोदय लिखते हैं कि प्राचीन काल में मीमांसा विषय के कई मत थे, जिनमें से जैमनिमुनि का एक मत है। दूसरों के ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। लेखक ने लिखा है कि जैमनि के सूत्रों के लिखे जाने का समय ईसा से २०० वर्ष पहले का मालूम होता है। इन सूत्रों पर प्राचीन भाष्यकार ये थे—भर्तृमित्र, भवदास, हरि और उपवर्ष। इस समय सब से श्रेष्ठभाष्य शवरभाष्य है जिसे शवरमुनि ने लिखा है। शवर का समय ईसा से ५७ वर्ष पहले का बताया जाता है। इस भाष्य पर वार्त्तिककार की व्याख्या है। इसी व्याख्या के आधार पर प्रभाकर ने शवरभाष्य पर अपनी बृहति नामक टीका लिखी है।

मीमांसा मत के दो धुरन्धर आचार्य हैं—कुमारिल और प्रभाकर। कुमारिल का प्रसिद्ध स्वतंत्र ग्रन्थ, जिसका उद्देश शवरभाष्य का स्पष्टीकरण है, तीन भागों में है। पहले भाग का नाम श्लोक वार्तिक है, दूसरे का तंत्रवार्तिक और तीसरे का टुप्टीका। कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डनमिश्र थे, जिन्हें शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ में हराकर अद्वैतवेदान्ती बनालिया था। यह भी कहा जाता है कि प्रभाकर भी कुमारिल का शिष्य था, पर प्रभाकर और कुमारिल के सिद्धान्तों में भिन्नता है और ये दोनों मीमांसाकार समकालीन थे।

मीमांसा साहित्य हिन्दुओं के लिये बड़े महत्व का है, क्योंकि इसके नियमों के अनुसार केवल वैदिक क्रियाएँ ही नहीं की जाती हैं वरन स्मृतिशास्त्र, जिसके अनुसार हिन्दुओं के प्रतिदिन के कर्म यज्ञादि किये जाते हैं, मीमांसा शास्त्र से ही नियमित होता है। मीमांसाकार छः प्रमाण मानते हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति शब्द और अनुपलब्धि।

मीमांसा-मतानुसार तीन प्रकार की विधियां हैं—अपूर्वविधि, नियमविधि और परिसंख्याविधि तथा वेदवाक्यों का अर्थ समझने के लिये तीन नियम हैं-१ जिन वाक्यों का समष्टिरूप में ही अर्थ होता है, पृथक् पृथक् वाक्य का अर्थ नहीं होता; २ जिन वाक्यों का पृथक् पृथक् ही अर्थ हो सकता है, समष्टि

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप से अर्थ नहीं होता और ३ जो वाक्य अपूर्ण हैं और जिन का प्रकरण संगति से उचित शब्द मिलाकर ही अर्थ लग सकता है।

प्रमाणवाद

लेखक महाशय ने प्रमाणवाद की बड़ी महत्वपूर्ण आलोचना की है। इसमें जितने दार्शनिकमत हुए हैं, सभी के सिद्धान्त तुलनात्मक दृष्टि से लिखे गये हैं। आप लिखते हैं कि बौद्धों का सौत्रान्तिकमत यह मानता था कि हम संसार की सब वस्तुओं का ज्ञान वैसा ही प्राप्त करते हैं जैसी कि वह वास्तव में है। पीछे अनुभव से उसकी जांच कर लेते हैं। सत्यज्ञान वही है जो बाहरी पदार्थों के अनुसार है।

योगाचार कहते हैं कि जब हमारी पहुँच पदार्थों के ज्ञान तक ही है और पदार्थों तक नहीं हो सकती, तब हमें पदार्थों को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। बाहरी पदार्थ असत्य हैं और उनका ज्ञान, जो हमें होता है, सत्य है। न्याय वाले कहते हैं कि पदार्थों का ठीक और सही ज्ञान इन्द्रियों के समुचित प्रयोग से होता है। इस ज्ञानोपलब्धि में बोध और बोधाबोध स्वभाव का प्रयोग होता है अर्थात् पहले इन्द्रिय का इन्द्रियार्थ से मिलना, फिर इन्द्रिय का मन से मिलना और फिर मन का आत्मा से मिलना। जब यह क्रिया होती है तब ज्ञान होता है।

सांख्यमत वाले बाहरी पदार्थों और उनके ज्ञान में भेद अवश्य मानते हैं, परन्तु उनका कथन है कि यह ज्ञान बाहरी पदार्थों का रूप है, इसलिए यह उन पदार्थों से सर्वथा भिन्न नहीं हो सकता। साथ ही यह बात भी है कि यह ज्ञान एक प्रकार की अदृष्टि सूक्ष्म वस्तु है जिसमें बाहरी पदार्थों का न भारीपन है और न उनकी स्थूलता ही है। जब कि यह ज्ञान उन पदार्थों का रूप है तब यह आप ही सिद्ध हो जाता है कि यह ज्ञान भी उसी वस्तु का बना है जिससे पदार्थ बने हैं। पदार्थों का रूप स्थूल है और ज्ञान का सूक्ष्म। वस्तु एक ही है स्थूल और सूक्ष्म रूपों का अन्तर है।

मीमांसा वालों में प्रभाकर का मत न्याय वालों से मिलता है, किन्तु वह कहता है कि ज्ञान एक ऐसी अद्भुत और अद्वितीय वस्तु है कि उसमें

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों एक साथ ज्ञात हो जाते हैं। कुमारिल का मत है कि ज्ञान आत्मा की चेष्टा से होता है और इसी से बाहरी पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। ज्ञान यद्यपि देखा नहीं जा सकता पर उसका अनुमान हो सकता है।

विज्ञानवादी बौद्ध, सांख्यमतावलम्बी और मीमांसाकार तीनों इस बात में तो सहमत हैं कि हम सभी ज्ञान का अनुभव करते हैं, परन्तु विज्ञान-वादी बाहरी पदार्थों को नहीं मानते और इसलिये ज्ञान प्रमाण के विपरीत कहते हैं। सांख्य वाले बाहरी जगत् को तो मानते हैं पर शुद्ध चेतन और ज्ञान के बीच में भेद छोड़ देते हैं। प्रभाकर इस भेद की परवाह ही नहीं करता और कहता है कि ज्ञान में त्रिकुटी का ज्ञान हो जाता है। कुमारिल एक ज्ञान-चेष्टा मानता है किन्तु इसे आत्मा से पृथक् समझता है। यह प्रश्न बिना हल हुए ही रह गया कि ज्ञान का सांसारिक पदार्थों से कैसे सम्बन्ध हो सकता है और बाहरी पदार्थों का जगत् अथवा अज्ञान का जगत् कहां तक वास्तविक सत्यता रखता है?

वेदान्त का मत है कि जब तक पूर्ण ब्रह्म का, जो वास्तविक सत्य है, अनुभव न हो जाय, तब तक बाहरी जगत् के पदार्थों का अविपरीत ज्ञान सत्य कहा जा सकता है।

बाहरी पदार्थों का ज्ञान इस प्रकार होता है। इन्द्रियों-द्वारा बाहरी पदार्थ का मेल अन्तःकरण से होता है। इस मेल से अन्तःकरण उसी पदार्थ के रूप का हो जाता है जिसे वृत्ति कहते हैं। वृत्ति के होने पर उस पदार्थसम्बन्धी अज्ञान नष्ट हो जाता है और चिदाभास के द्वारा वह पदार्थ जो अब तक अज्ञान से छिपा था, दिखाई देने लगता है। इस प्रकार किसी पदार्थ का ज्ञान चिदाभास रूप है जो ज्ञेय पदार्थ रूपी वृत्ति के द्वारा होता है। शुद्ध चेतन, अज्ञान के कारण छिपा रहता है और जब अन्तःकरण-वृत्तिद्वारा अज्ञान नष्ट हो जाता है तो यह चेतन प्रकट हो जाता है। इस ज्ञानोपलब्धिक्रम में ज्ञान होने के समय बाहरी और भीतरी भेद नहीं रहता अर्थात् बाहरी पदार्थ पृथक् है और देखने वाले के भीतर का चेतन पृथक् है, यह बात नहीं रह जाती,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोनों एक हो जाते हैं। जो चेतन अन्तःकरण के द्वारा प्रकट होता है उसे जीव-साक्षी कहते हैं।

वेदान्त

लेखक महाशय ब्रह्मसूत्रों के लिखे जाने का समय ईसा से पहली दूसरी शताब्दि बताते हैं, किन्तु यह केवल अनुमान है, कुछ भी निश्चयात्मक-रूप से नहीं कहा जा सकता। हम पहले भी लिख चुके हैं कि सन् संवतों के विषय में जो कुछ लिखा गया है और लिखा जाता है वह अधिकतर कल्पना है-कोई अकाट्य प्रमाणयुक्त सिद्धान्त नहीं है।

अद्वैत वेदान्त का पहला भाष्य गौढपादाचार्य का है और यह भाष्य माण्डूक्योपनिषद् पर है। इस का समय सन् ७८० बताया जाता है। गौढ-पादाचार्य के शिष्य गोविन्दाचार्य थे और इनके शिष्य श्री शंकराचार्य जी थे। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर शारीरक भाष्य लिखा है जो अद्वैतवाद वेदान्त विषयक है। इस भाष्य के आधार पर पीछे के कई भाष्य, टीकाएं और स्वतंत्र ग्रन्थ हैं जो अद्वैतवाद साहित्य के परमावश्यक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में निम्न लिखित ग्रन्थ मुख्य हैं:—

आनन्दगिरिकृत न्यायनिर्णय। } शारीरक भाष्य पर भाष्य
गोविन्दानन्दकृत रत्नप्रभा। }

वाचस्पतिकृत भामती।

अमलानन्दकृत कल्पतरु जिसका आधार भामती है।

काञ्ची के रंगराजाध्वरीन्द्रकृत कल्पतरुपरिमल, जो कल्पतरु की टीका है।

पद्मपादकृत पञ्चपादिका, जो कल्पतरु परिमल की टीका है।

इस ग्रन्थ पर कई टीकाएं दूसरों ने भी लिखी हैं।

विद्यारण्यस्वामीकृत विवरणप्रमेयसंग्रह।

,, जीवन मुक्ति विवेक।

,, पंचदशी।

सुरेश्वरकृत नैष्कर्म्यसिद्धि।

सर्वज्ञात्ममुनिकृत संक्षेप शारीरक।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीहर्षकृत खण्डनखण्डखाद्य।

चितसुखकृत चितसुखी, जो ऊपर के ग्रन्थ पर भाष्य है।

" तत्व दीपिका।

धर्मराजाध्वरीन्द्रकृत वेदान्त परिभाषा।

रामकृष्णाध्वरिकृत शिक्षामणि। } वेदान्त परिभाषा पर टीकाएं।

अमरदासकृत मणिप्रभा। }

मधुसूदन सरस्वतीकृत अद्वैतसिद्धि। इस पर तीन टीकाएँ हैं। सदानन्दकृत वेदान्तसार, सदानन्दकृत अद्वैतसिद्धिसिद्धान्तसार। आनन्दबोधभट्टाचार्यकृत न्यायमकरन्द। प्रकाशानन्दकृत वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली।

जो भाष्य गौढपाद ने माण्डूक्योपनिषद् पर लिखा था उसमें विज्ञानवादी और माध्यमिक बौद्धमतों के अंश थे क्योंकि यह अद्वैतवेदान्त से बहुत कुछ मिलते थे। इन्हीं के आधार पर शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद वेदान्त का प्रतिपादन किया है। लेखक महोदय का कहना है कि इस बात के प्रमाण हैं कि गौढपाद बौद्धमतावलम्बी थे। यदि पूर्णरूप से बौद्ध नहीं थे तो कम से कम उन्हें बौद्धमत से बहुत कुछ सहानुभूति अवश्य थी। यदि लेखक महाशय की कल्पना ठीक समझी जाय तो अद्वैत वेदान्त मत पर बौद्धसिद्धान्तों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। हम इसे केवल कपोलकल्पना मानते हैं और जोर के साथ कह सकते हैं कि शङ्कराचार्य का बौद्धमत की ओर जरा भी झुकाव नहीं था, वरन उन्होंने बौद्धमत के सिद्धान्तों को बड़ी चतुरता और बुद्धिमत्ता से काटा है। शंकराचार्य ने ही बौद्धधर्म को भारतवर्ष से दूर किया है।

अद्वैतवेदान्त का सार यह है—अन्तिम और पूर्ण सत्य आत्मा ही है, वह एक होते भी अनेक दिखाई देती है। जगत् असत्य है केवल आत्मा ही सत्य है। शारीरिक और मानसिक घटनायें केवल देखने मात्र की हैं, सत्य आत्मा इस माया प्रपञ्च के परे है। दूसरे मतों ने दृश्यमान संसार को सत्य मानकर इसमें कार्यकारण का निर्णय किया है। वेदान्त ने इस दृष्यमान् जगत् का वह सत्य कारण ढूंढ़ निकाला है जो दूसरों की गति के परे था। यह कारण ब्रह्म है। वही सत्य है। जगत् उसका कार्य है

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो असत्य है। ब्रह्म और जगत् में वही सम्बन्ध है जो रस्सी और सर्प में है। रस्सी सब कालों में एकसी है और अंधेरे में देखने वाले को सर्प दिखाई देती है, वास्तव में सर्प नहीं है। सर्प रस्सी का विवर्त है अर्थात् भ्रमरूप है। इस उदाहरण में रस्सी कारण है और सर्प कार्य है। अर्थात् कारण सत्य है और कार्य असत्य है। इसी प्रकार सत्य ब्रह्म कारण से जगत् कार्य उत्पन्न होता है, जो असत्य और मिथ्या है। जैसे अन्धकार हट जाने पर सर्प का भ्रम जाता रहता है और रस्सी अपने असली रूप में दिखाई देने लगती है, वैसे ही अज्ञान या अविद्या के दूर होने पर जगत्प्रपञ्च का लोप हो जाता है और केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है, उसके सिवा और सब माया का प्रञ्पच है। माया की सत्ता दो प्रकार की है—व्यवहारिक और प्रतिभासिक। जागृतिकाल में हम जिन वस्तुओं को देखते हैं और सत्य मानते हैं उनकी व्यवहारिक सत्ता है किन्तु जिन वस्तुओं और दृश्यों को हम स्वप्न में देखते हैं उनकी प्रातिभासिक सत्ता है, यह सत्ता व्यवहारिक सत्ता के सामने असत्य है। इसी प्रकार व्यवहारिक सत्ता ब्रह्म की वास्तविक सत्ता के सामने असत्य है। वास्तविक सत्ता का अनुभव तभी हो सकता है जब हम विद्या और ज्ञानाग्नि-द्वारा अविद्या और अज्ञान के बन्धन भस्म कर दें और केवल ज्ञान-स्वरूप ही हो जांय।

लेखक महाशय ने अद्वैतवादवेदान्त के जितने कठिन प्रश्न हैं उन सब को ही हल करने में अपनी बुद्धिमत्ता दिखाई है। अद्वैतवेदान्त के भेदों को जैसे अवच्छिन्नवाद, आभासवाद, प्रतिविम्बवाद, एक जीववाद, दृष्टि-सृष्टिवाद आदि को भी सूक्ष्मतः लिखा है। आपने भ्रम की उत्पत्ति बताने में सत्ख्याति, असत्ख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, अख्याति और अनिर्वचनीयख्याति—इन सब का संक्षेप में विवेचन किया है और वेदान्तदर्शन की तुलना भिन्न भिन्न दार्शनिक विचारों से भी की है। वेदान्त के आचारसम्बन्धी तत्वों का भी, साधनचतुष्टय का, सविस्तर वर्णन किया है। फलतः आपने अद्वैतवादवेदान्त के सभी अङ्गों का थोड़ा थोड़ा वर्णन किया है। ये सब बातें लिखते हुए भी लेखक महाशय का प्रधान लक्ष्य वेदान्त ही नहीं वरन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सब दर्शनमतों के दार्शनिक विचारों को सुचारु रीति से समझाना रहा है और इस उद्देश्य में उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

वेदान्तसूत्रों पर श्री शंकराचार्य के शारीरकभाष्य के सिवा अन्य भी कई भाष्य हैं जो श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य और श्री माध्वाचार्य ने किये हैं और जिनके कारण विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैतवादों का उदय हुआ है। लेखक महाशय ने इन आचार्यों के सिद्धान्त प्रतिपादन को अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग के लिये रखा है। अच्छा तो यही होता कि इन सब का विवेचन भी इसी भाग में होता जिससे इसे पढ़ने वालों को वेदान्त विषय का सर्वाङ्ग बोध हो जाता।

भारतीय षट्शास्त्रों पर प्रोफेसर मेक्समूलर ने भी एक ग्रन्थ लिखा है। जब वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था तब वह अपने विषय का अद्वितीय ग्रन्थ गिना जाता था और वास्तव में वह ग्रन्थ भी ऐसा ही था, पर प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित होने से उसका महत्व ही नहीं जाता रहा, वरन वह एक सामान्य और गौण ग्रन्थ हो गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ मेक्समूलर के ग्रन्थ से बहुत उच्च श्रेणी का है। इसकी खोज मेक्समूलर की खोज से कहीं अधिक है। इसका वर्णन प्रायः शुद्ध और पक्षपात रहित है। इसका तुलनात्मक अंश बड़े महत्व का है एवं इसका विषय वर्णन भारतीय प्रणाली का है। हम लेखक महाशय को ऐसे ग्रन्थ लिखने पर हार्दिक बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने ग्रन्थ के अगले भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित कर भारतीय-ज्ञान की महत्ता और गम्भीरता को अभिव्यक्त करेंगे और एतद्देशीय तथा विदेशीय मनुष्यों को भारतीय-ज्ञान सिखाकर कृतज्ञ करेंगे।

पुस्तक उसी आकार की है जिस आकार की "सेक्रेड बुक्स आव दी ईस्ट" हैं। पुस्तक की सुन्दर जिल्द है और उसमें अनुक्रमणिका सहित ५२८ पृष्ठ हैं। पुस्तक बहुत शुद्ध और सुन्दर छपी है। पुस्तक का मूल्य पुस्तक पर नहीं दिया है। इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद की अत्यन्त आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य में अब तक ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है।

कन्नोमल।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोस्वामी तुलसीदासजी की लिपि

मेरे परममित्र स्वर्गीय श्री जगन्मोहन वर्म्मा ने कई बर्ष हुए मुझे काशी के सरकारी सरस्वती-भवन में गोस्वामी तुलसी-दासजी के हाथ की लिखी वाल्मीकीय रामायण के उत्तर-कांड की एक प्रति दिखायी थी। इस पोथी की लिखावट बड़ी सुन्दर है। आदि से अन्त तक अक्षरमाला एक ही सांचे में ढली हुई जान पड़ती है। अन्त में एक भिन्न कलम और स्याही से लिखी हुई प्रशस्ति शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में है। निस्सन्देह ये चारों चरण पीछे से लिखे गये हैं। समस्त ग्रन्थ से इनके "श्र" "भ" "ज" "व" "कृ" भिन्न हैं। ये चारों पद उसी लेखक के लिखे नहीं जान पड़ते, जिसकी लिखी सारी पोथी है। इस प्रशस्ति में संदिग्ध अंश के होते हुए भी यह स्पष्ट हो जाता है कि "दत्तात्रेय नामक किसी येदिलशाह के दानाध्यक्ष ने यह पोथी लिखी है"। तमाशे की बात यह है कि इन चारों चरणों के ऊपर ही, जिस कलम से, जैसे सांचे के ढले अक्षरों में सारी पोथी लिखी है, उसी कलम से, वैसे ही सांचे के अक्षरों में लिखा है—

"समाप्त चेदं महाकाव्य श्रीरामायणमिति ॥
संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि ७ रवौ लि० तुलसीदासेन॥"

यह स्पष्ट है कि "तुलसीदास ने संवत् १६४१ की अगहन सुदी सप्तमी, रविवार को (पोथी) लिखी।" पोथी के तुलसीदास नामक किसी व्यक्ति की लिखी होने में रत्ती भर सन्देह नहीं है। परन्तु नीचे की प्रशस्ति, दत्तात्रेय नाम के दानाध्यक्ष की लिखी बताती है। यह क्या बात है? एक ही पोथी दो व्यक्तियों की लिखी तो हो नहीं सकती, क्योंकि लिखावट बिल्कुल एकसी है। दत्तात्रेय दानाध्यक्ष का ही वैष्णव नाम तुलसीदास रहा हो, यह असंभव कल्पना नहीं है, परन्तु प्रशस्ति का लेखक अवश्य ही पोथी के लेखक से भिन्न है, तो क्या प्रशस्ति का लेखक तुलसीदासोपनामक दत्तात्रेय दानाध्यक्ष का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई अनुचर था ? तभी तो उसने दत्तात्रेय की प्रशंसा लिखी है ? परन्तु यदि दत्तात्रेय का उपनाम तुलसीदास होता तो स्वयं पोथी के लिखने वाले ने "लि० दत्तात्रेयोपाह्व तुलसीदासेन" लिख दिया होता ? इतने से काम चल सकता था। फिर जहां "दानादिभाजिप्रभुः" आदि कई विशेषण लगाये वहां उसके वैष्णव और तुलसीदासोपनामक होने की चर्चा करने में क्या कठिनाई थी ? अतः तुलसीदास नामक लेखक के दत्तात्रेयोपाह्व होने में सन्देह अधिक है। ऐसी दशा में यह कल्पना समीचीन नहीं जान पड़ती कि दत्तात्रेय ही लेखक है जिसका वैष्णव नाम तुलसीदास था। संभव है कि जब यह पोथी येदिलशाह के दानाध्यक्ष दत्तात्रेय के अधिकार में आयी तब उसके किसी खुशामदी ने पोथी के लेखक होने का श्रेय दत्तात्रेय को देने के लिये यह प्रशस्ति रचकर अन्त में लिख दी। काशी में इसका लिखा जाना प्रशस्ति भी मानती है। दत्तात्रेय काशी में ही रहते होंगे। उनके पास इस काशी की ही लिखी पोथी का आ जाना,—वह धनाढ्य थे, दानाध्यक्ष थे-कोई आश्चर्य की बात न थी। यह भी कोई असंभव कल्पना नहीं है कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी ने यह पोथी किसी उदारचेता दत्तात्रेय नामक रामायणभक्त को लिखने के कुछ काल पीछे दी हो और उसको ऐसी पोथी लिखकर देने की पहले से ही प्रतिज्ञा करके लिखी हो और देते समय यह प्रशस्ति रचकर स्वयं लिख दी हो। जल्दी से लिखने और बहुत काल पीछे भिन्न परिस्थिति में लिखने के कारण संभव है कि लिखावट में अन्तर आगया हो। परन्तु फिर "दत्तात्रेय समाह्वयः" प्रथमा क्यों ? चतुर्थी क्यों नहीं ? शायद इसलिए कि दत्तात्रेय दानाध्यक्ष की प्रेरणा से पोथी तुलसीदास जी ने लिखी थी। जिसकी प्रेरणा से लिखी गयी उसी की कृति समझी जानी चाहिये। इसी दृष्टि से शायद प्रथमा विभक्ति का प्रयोग हुआ है अथवा यह भी कल्पना हो सकती है कि दत्तात्रेय वाली प्रशस्ति सर्वथा जाली है। ऐसी सुलिखित पोथी की लेखकता हड़पने के लिए दानाध्यक्षजी की कारवाई है।

गोस्वामी तुलसीदासजी राम चरित मानस में लिखते हैं—

"संवत सोरह सै इकतीसा।
करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवमी भौमवार मधुमासा ।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा" ॥

अर्थात् वाल्मीकीय उत्तरकांड लिखे जाने से दस वर्ष पहले रामचरितमानस की रचना गोस्वामी जी ने अयोध्या में आरम्भ की थी । फिर आगे किष्किंधा कांड के मंगला चरण में कहते हैं—

"मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न" ॥

इस सोरठे पर मानसप्रेमी यह कल्पना करते हैं कि किष्किन्धाकांड की रचना के समय गोस्वामो जी काशी में रहने लगे थे । यद्यपि ठीक समय का पता नहीं लगता तथापि इतना अनुमान करने में कोई बहुत भारी भूल नहीं हो सकती कि संवत् १६३६-३७ के लगभग गोस्वामी जी अवश्य ही काशी में रहे होंगे । उनकी जोवनी से यही पता लगता है कि उनका शेष जीवन काशी जी में ही बीता । इस आधार पर यह कोई असम्भव कल्पना नहीं जान पड़ती कि रामचरितमानस समाप्त करके गोस्वामी जी ने वाल्मीकीय रामायण लिखना आरम्भ किया हो । मानस सा महाकाव्य रचने में पांच छः वर्ष भी लग जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । परन्तु वाल्मीकीय रामायण की पोथी तो प्रतिलिपिमात्र थी । उसका वर्ष दो वर्ष में समाप्त हो जाना सहज था । इसलिए मैं ऐसा समझता हूँ कि यह उत्तरकांड मानसकार तुलसीदास जी के हाथ का लिखा है । दत्तात्रेय वाली प्रशस्ति पीछे से लिखी गयी । यदि "दत्तात्रेय समाह्वयः" की प्रथमा प्रेरणासूचक नहीं है तो अवश्य ही यह शार्दूलविक्रीड़ित जाली है । मेरी समझ में इसका जाली होना अधिक सम्भाव्य है ।

बहुत दिनों से मैं राजापुर वाली पोथी गोस्वामी जी के हाथ की लिखी समझता आया । वाल्मीकीय रामायण की लिपि देखी तो उससे भिन्न पायी । इस पर अपनी पूर्व धारणा के अनुसार सन्देह हुआ कि यह वाल्मीकीय रामायण ही मानसकार के हाथ की लिखी न होगी, राजापुर वाली पोथी पर ही सन्देह क्यों करूँ ? राजापुरवाली पोथी के कुछ पन्नों की फोटो पूज्यवर लाला सीताराम जी ने लिवाई थी । उससे मिलान किया तो दोनों की लिपियों में अन्तर पाया । मन को संतोष न हुआ । गत वर्ष शरद् ऋतु में चित्रकूट गया ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वहां से विशेष प्रबन्ध करके राजापुर गया। वहां के एक मित्र (पहले के छात्र) पंडित मोहनलाल वैद्यराज के उद्योग से राजापुरवाली उस विख्यात प्रति के दर्शन हुए। उस पोथी के अधिकारी बड़े सज्जन हैं। घंटों अच्छी तरह उलट पलट कर आदि से अन्त तक देख डाला। सब बातें वैसी ही पायीं जैसी पहले के देखनेवालों ने लिखी थीं। अन्त के पन्ने पर एक ही ओर लिखा है। इति नहीं लगी है। दूसरी ओर कहा जाता है कि सादा है। ऐसा ही प्रकाश में देखने से भी अनुमान होता है, क्योंकि अब उस पत्रेकी रक्षा के लिये उस पर एक मोटा कागज़ चिपकाया हुआ है। पंडित रामगुलाम ने जब देखा था, कहा जाता है कि तब कागज न चिपका था। पंडित रामगुलाम जी ने दूसरी ओर सादा ही पाया था। अनुमान यह किया जाता है कि जब ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा था, तो उसे इति के उपरांत अपने लेखक होने का निर्देश करने की आवश्यकता क्या थी? तुलसीदास अपनी छाप सिवाजी कविता में देने के अन्त में यह क्यों लिखते कि इसको लिखा भी मैं ने ही है? अपनी रचना के अन्त में "ब कलम खुद" लिखने या "सही" करने का तो कभी रिवाज न था और न है। अतः यदि अन्त में किसी लेखक का नाम नहीं लिखा है तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पोथी स्वयं ग्रन्थकार की लिखी हो सकती है। यह भी असम्भव नहीं कि ग्रन्थकार की लिखी न हो। किसी और ने लिखा। समाप्त न कर पाया। समाप्त करने पर ही तो नाम लिखता? यह युक्ति राजापुरवाली पोथी पर ठीक बैठती है। काशी नरेश के यहां जो प्रति है उसमें एक छन्द और दोहा राजापुरवाली पोथी की अपेक्षा अन्त में अधिक है। क्या आश्चर्य्य है कि लेखक वह अंश लिखकर अपना नाम देता परन्तु किसी अनिवार्य्य कारण से उस अंश के लिखने की नौबत ही न आई? "रसा रसातल" में रसा का संशोधन "राजु" करना यह लेखक के लेखप्रमाद पर होना असम्भव भी नहीं है। सब से बड़ी बात जो उस पोथी के ग्रन्थकार के हाथ की लिखी होने की समर्थक है, वह परम्परा है, जो कहती आई है कि राजापुर वाली पोथी अवश्य ही गोस्वामी जी की लिखी है। राजापुर के गोस्वामी जी के स्थान, बल्कि जन्म-स्थान होने की परम्परा भी इससे कम मूल्य की नहीं है। वहां जमुना जी के तट पर आज किसी भक्त की उदारता से बड़ा ही भव्य मन्दिर बना हुआ है। कहा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाता है कि यह मन्दिर गोस्वामी जी की कुटिया की ही जगह पर है। जन्म-स्थान नहीं तो यह कभी उनका निवासस्थान रह चुका हो तो कोई आश्चर्य्य की बात न होगी। सम्भव है कि इसी जमुनातट की याद में उन्हों ने विनय का "जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न" वाला पद लिखा हो। जमुना जी के बढ़ने से गाँव के किसी अंश को चाहे जो हानि हो, पर कुटी इतने ऊंचे पर है कि वहाँ तक नदी के पहुँचने की कम सम्भावना है। इतना सब मान लेने पर भी यह समझ में नहीं आता कि मानसरचना के पीछे काशी छोड़ कर वहाँ रहने को वह कब गये? मानसरचना के पहले वह राजापुर में रहे हों, या वहीं जन्म हुआ हो, इससे लिपि की उलझन नहीं सुलझती। किसी कारण से उनकी पोथी वहाँ ले जायी गयी और रखी गयी, यह मेरी समझ में कष्ट कल्पना है। अधिक सम्भावना यही है कि राजापुर वाली पोथी गोसाईं जी के हाथ की लिखी नहीं है, और काशी के सरस्वती-भवन वाली पोथी उनके हाथ की लिखी है।

माधुरी के गत श्रावण के अंक में श्री भगीरथप्रसाद जी दीक्षित लिखते हैं कि काशी वाली पोथी के "अक्षर राजापुर के अयोध्याकांड (रामायण) से मिलते हैं।" यह पढ़कर मुझे कुछ आश्चर्य्य हुआ। मैंने गतवर्ष दोनों के फोटो-चित्र लिये थे। दोनों की लिपि मिलाई। मुझे तो बड़ा अन्तर प्रतीत हुआ। सुभीते के लिये मैं दोनों के तीन तीन पृष्ठों के फोटो-चित्र देता हूँ। पाठक स्वयं भेद और समानता का पूरा परिशीलन कर लें।

समानता की बातों पर पहले विचार कीजिये। दोनों नागराक्षरों में लिखी पोथियां हैं। दोनों प्रायः ऐसे काल की लिखी हैं कि लिपि में विशेष अन्तर की सम्भावना भी नहीं है। नागराक्षरों में अच्छे लिखने वाले जब लिखते हैं तब न, ग, म, स आदि कई अक्षर ऐसे हैं कि सभी सुलेखकों के प्रायः समान ही होते हैं, कलम और स्याही का भेद भले ही प्रतीत हो पर बनावट के भेद इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण परीक्षण से पता नहीं लगता। निदान दोनों पोथियों की लिखावट में क, ग, द, ठ, प, फ, म, ल, ष, ह, यह दस अक्षर प्रायः समान हैं। भाषाभेद होने के कारण राजापुर वाली पोथी में ऋ, ख, ङ, ञ, ण, श, इन छः अक्षरों का एवं क्ष, ज्ञ, श्र, श्य, आदि संयुक्ताक्षरों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीशारदा

उ० श्रीगणेशाय नमः ॥ जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा। अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥१
पापरोऽप्यस्परा मस्य राजुसानां हृये कृतो अजमुक्तमपथ भवत्र घधंपतिने दिर्मां जयोनरो यंव कीतो रेम्भ
नयव वा कण्वो मेधातिथि पुत्राः एवमाये संश्रितो दिशां लक्ष्माते ये अथ भगवान् नमुचो विभुवस्तथा श्रात्मतुल्लेस
हाः स्मापे श्रितादक्षिणां दिशां उपगु इम गो पुलो रेम्भ अमहाऋषिः ते प्याजयुसाशिप्या वे त्रती बीयोश्रि ताद
शांवशिष्ठः काश्यपोथात्रि विश्वामित्रो भगो तमः जमदग्निरिद्धा जप्यथा सप्तर्षयो मजाः प्राप्य तेन महात्मानो
राघवस्य निवेशनं अथिषिताः प्रतीहारार्थं कृताश सम विपहाम्प्नती होर ज्ञानस्ततो गस्त्य व वनार्षिश्रम भीपरा
ववस्याय पपि देशम हाप्तनों सम्भद सहसा प्र चंद्रसमद्युतिं श्रासिं काथयामास सर्वंशाप सर्यभिभा स
हाश्च वाग्रामा रसमुर्न भ सूर्यसमप्रभाः तंयो नावत्र्यो द्वास्थो आयेशयत्या सुखं। हजिता विविध देश
नाना रत्नविभूषितां दृष्टवा आमाल्मुनीसांसपन्ये याय कृतांजलिः रामो भिवाद्य प्रणतत्रासनाम्यादिदेश हाशि
कांवनेषु दिव्ये श्वास्तीर्णेषु सुखेषु वा कथो नरेन्द्रथास्त्रि नत्वा मन्ने पि पिं गवांगा घमावमनी पंवंद दोवाघं
या विधि रामेण कृशलं तेम्दृष्ट्वाम पञ्चवती महर्षयो वेददिदो रामं वचनमब्रुवन् कुशलं नो महाबाहो सद

उ० रिषसी सर्वतो ॥ इ ४ मा रा व का माजी धः हन्यमाने अतमिपप्रनाभे न दृष्ठत माता
९२ व्यवासारिहत्राय भातिवेगस्वां सर्वो संस्कृत्यम तः को पा ब जलो निर्शाचरः पद्मनाभमिदं पाहवन
पभृहत पो नारायणन जानीपेतत्र धर्मा स नातनो युध्यमानान्यो स्मांस्वं भयार्त हंसि पथेतर । पराङ्मुख व
धपाप्प्य करोति सहीतरः महत्राजभते स्वर्गं कृत पुण्यपापिनः श्रुतांशु त्वम् राघवात्तेपि मिव चक्र शार्ङ्ग गदाधरी
स्वयंस्थितो हंपश्यामि वलं दर्शयत तवामात्य वक्त्रं स्थितं दृष्टा माल्यवन्नमिवाव जेछवा वरा राक्षसेंद्र तं देवतेंद्र
नुमैत्र वजी स्थित्रो भयभीतानां देवानामभयं मया राक्षसो त्सादनादन्यं देतद्भुपाल्पते प्राणरपि प्रियं कार्यं
देवतानां सदा मया सो हं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि एवं विष्णुवामत्तं रक्तोज रुहजो वनी शत्रया ।
विभेद संक्रुद्धो राक्षसेंद्रो जहासवामाल्यव तु जानिमुक्ता शक्तिर्गोविंदं गच्छन्तस्वना हरेरुरसि सलयामेव स्पवरा
तृक्रुदा नत भासेव निः कम्प्य शक्तिं शक्तिधरप्रिया माल्यवत्रं संनिदिश्य विदे पावुसहे तारणः स्कंदोत्सृष्टेव साश
ि गोविंदकर निःसृता कांक्षत्रा रांकसबाधान्महो ल्केवांजनाचलं सातस्मा रसि विस्त्री रहाराभिः प्रभासना
पत्तद्राक्षसेंद्रस्य गिरिकूटे यथाशनिः तया भिन्नत नुत्राणः प्राविशाद्वि पुलं तमः माल्यवान्पुनरा स्वस्थः तस्थौ।

उ० न मर्त्येषु संचर प्रवेताणुपापान्यपिसदाकुर्वन्नसपापेनलिप्यते अस्योध्याहृगरी रम्या शून्या वर्षगणा
१२६ पि नृपभंश्राय राजानं निवेश मुपयास्यति इत्याख्यानमिदं आख्यं चो तरं सभौ कृतवान्भार्गवोधीमा
ब्रह्मातनारद पापवेदेकं वश्लोकं वा सर्वपापात्प्रमुच्यते सर्वदा पठतेयस्तु ब्रह्मलोकं स गच्छति एतदा
ख्यानमायुष्यं सविष्यो रघुं द्विजः कृतवान्स्वर्गतोधीमान्ब्रह्मलैवं वा अपद्यते ॥ ॥इत्यार्षे रामायणे वाल्मी
कीये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायामुत्तरकाण्डे स्वर्गारोहणं नाम सर्गः ॥ ॥श्रीरामः॥ ॥समा
प्त चेदं महाकाव्यं श्रीरामायणमिति ॥ ॥संवत् १६४१ समये ते ... तुलसीदासेन ॥
श्रीमद्दिल्लेशाह... श्रीमंडलीपुर दियादानादिभ्यो दिग्वपुः वाल्मीके कृ
तं संपूर्ण रिपोः पुर्यं... लिखितं नेकं मज्जिमावीर ॥१॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

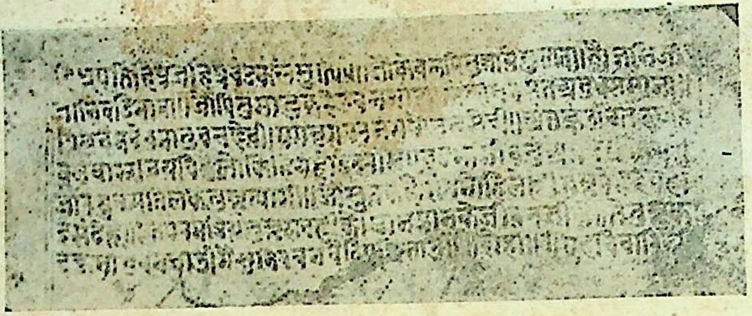

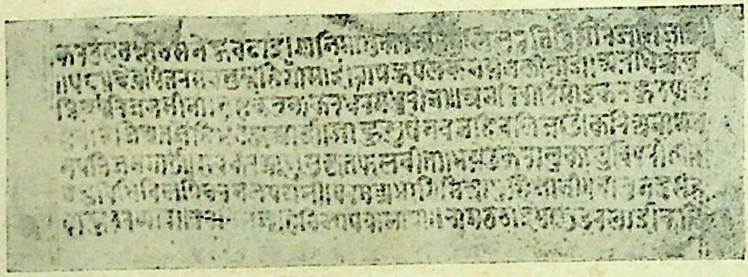

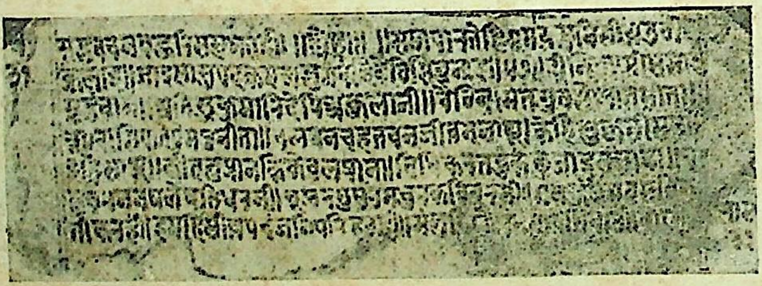

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का अभाव है। इस तरह दोनों में ४० (चालीस) समान अक्षरों में दस की लिखावट में कोई विशेष भेद देखने में नहीं आता। शेष ३ को लिखावट में इतना भेद है कि विचारशील पाठक स्वयं देख सकते हैं। कुछ उदाहरण हम यहां देते हैं।

(१, २६, १२) अ। दोनों में कुछ भिन्न है। काशीवाली प्रति में खड़ी रेखा के निम्नांश में हल्का खिचा पाया जाता है।

(३-४) इ। राजापुर वाली में आजकल कीसी है। राजापुर वाली में ऊपरी एक तिहाई रेखा का अभाव है।

(५-६) उ। दोनों के " उ " का अन्तर देखने से प्रतीत हो जाता है।

(७-८) ए। देखने से अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

(१३) ख। राजापुर वाली में " ख " की जगह " ष " का प्रयोग है। इसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की तत्कालीन लिपि के नियम के अनुसार " ख " की जगह " ष " स्वयं ग्रंथकार लिख सकता है।

(१४) घ। राजापुर वाली पोथी में यह अक्षर एक ही रूप में दीखता है। काशी वाली में इसके दो रूप व्यवहार में आये हैं।

(१५) च। राजापुर वाली पोथी में " च " की प्रधान ऊपरी रेखा स्पष्ट है। काशीवाली में स्पष्ट नहीं है।

(१६) छ। दोनों में स्पष्ट रूप से भिन्न है।

(१७) ज। " ज " की बक्ररेखा पड़ी रेखा से स्पष्ट नोक बनाती हुई काशी वाली प्रति में मिलती है। राजापुर वाली में नोक नहीं बनाती। नोक की जगह भी बक्र रेखा ही है।

(१८) द। इस अक्षर में सूक्ष्म भेद है जो देखने से स्पष्ट हो जाता है। राजापुर वाली पोथी का "द" अधिक सुन्दर है।

(१६) ब। राजापुर और काशी दोनों में "व" से ही "ब" का काम लिया गया है। काशी वाली में ब और व दोनों का काम "व" से लिया गया है। राजापुर वाली में ऐसा नहीं है। यदि दोनों एक ही व्यक्ति की लिखी होतीं तो यह अन्तर न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता।

(२०) भ । काशी वाली में यही अक्षर दो तरह से लिखा गया है। राजापुर वाली में केवल एक ही प्रकार है। भेद उसमें भी स्पष्ट है।

(२१) य । राजापुर वाली प्रति में य के तले बिन्दी है। काशी वाली में बिन्दी का अभाव है।

(२२) र । इस अक्षर में तो दोनों प्रतियों में इतना बड़ा अन्तर है कि यदि केवल इसका ही भेद होता और शेष अक्षरों में पूरी समानता होती तो भी यह मानना पड़ता कि दोनों पोथियां भिन्न व्यक्तियों की लिखी हैं। "राम" शब्द का दोनों में पाठक मिलान करलें।

(२३) स । राजापुर वाली में बराबर लम्बोत्तर पाया जाता है। काशी में यह बात नहीं है।

मैं तो जितना ही दोनों पोथियों की लिखावट पर विचार करता हूँ उतना ही दीक्षित जी के कथन को निराधार पाता हूँ। एक ही व्यक्ति की लिखावट में काल पाकर कुछ अन्तर पड़ जाता है, मैं यह भी मानता हूँ। इस युक्ति को लेकर कोई यह भी कह सकता है कि सम्भव है कि काशी और राजा-पुर की पोथियों के लिखने में काल का बहुत अन्तर पड़ गया हो। इस पर भी हमें विचार कर लेना उचित है। राजापुर वाली पोथी में लिखने की तिथि नहीं दी है। संवत् नहीं मालूम। इसलिये संवत् १६३१ से लेकर संवत् १६८० के बीच की लिखी अवश्य होगी, यदि वह पोथी गोस्वामी जी ने स्वयं लिखी है। लिखावट में अन्तर आने के लिये उनचास बर्ष बहुत होते हैं। काशी वाली प्रति रामचरित मानस के आरम्भ करने के दस ही बरस पीछे लिखी गयी। यदि हम मान लें कि राजापुर वाली संवत् १६३१ में लिखी गई—क्योंकि इससे पहले लिखा जाना सम्भव न था—तो दस वर्ष में गोस्वामी जी की लिखावट अधिक सुन्दर और गठित हो सकती है। परन्तु इ, द आदि कई अक्षर राजापुर वाली के अधिक सुन्दर हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि दस बरस पीछे अक्षर भद्दे हो जायँ। सब अंगों पर और अक्षरों पर विचार करने से काशी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाली लिपि देखने में निस्सन्देह अधिक सुन्दर जँचती है, पर अलग अलग अक्षरों पर विचार करने से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि काशी वाली लिपि राजापुर वाली लिपि का विकास है।

अब मान लीजिये कि राजापुर वाली पोथी ग्रन्थकार की ही लिखी है, परन्तु काशीवाली प्रति के दस बीस वर्ष पीछे की है। तो भी यही कठिनाई पड़ती है कि काशीवाली प्रति के ज, अ, आदि कई अक्षर अधिक सुन्दर हैं। इनका विकास राजापुर वाली में नहीं दीखता। सब बातों पर विचार करके जब लिखावट के सौंदर्य्य में काशीवाली प्रति अच्छी जँचती है तो दस बीस बर्ष पीछे जिस सौंदर्य्यविकास की आशा एक ही सुलेखक की लिपि में की जा सकती है उसका तो अभाव ही दीखता है। अतः यह मान लेना मेरी समझ में सर्वथा अयुक्त है कि दोनों पोथियां एक ही व्यक्ति की लिखी हुई हैं।

यह युक्ति भी पेश की जा सकती है कि गोस्वामी जी ने राजापुरवाली पोथी किसी धनवान् के लिये न लिखी होगी। काशीवाली प्रति शायद उन्होंने दत्तात्रेय नामक धनसम्पन्न राजा के दानाध्यक्ष के लिये लिखी थी, अतः अधिक सावधानी और मनोयोग से लिखी गयी हो। परन्तु इस युक्ति के लिए गोस्वामी जी जैसे निःस्पृह, निरपेक्ष, त्यागी के जीवन में स्थान नहीं हो सकता। यह बात प्रसिद्ध है कि वह भगवद्भक्तों को मानते थे, भक्तों से प्रसन्न होकर प्रसाद रूप अपनी पोथी दे डालते थे। परन्तु विशुद्धप्रेम से लिखी हुई चीज जितनी सुन्दर हो सकती है, उतनी यश, या धन के लोभ से लिखी हुई नहीं हो सकती।

तुलसीदास जी प्रकांड विद्वान् थे, महाकवि थे, पंडित थे, परन्तु संस्कृत व्याकरण के भारी विद्वान् न थे। यह बात उनके मंगलाचरणों से स्पष्ट हो जाती है। यही बात काशीवाली प्रति से भी प्रकट होती है। साधारण लेखक जो पोथियों के लिखने का पेशा करते थे, वह भी अपना नाम और तिथि लिखा करते थे, परन्तु वह नकल करने में "मक्षिकास्थाने मक्षिका" वाली कहावत का जैसे पालन करते थे वैसे ही व्याकरण से प्रायः इतने अनभिज्ञ होते थे कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने नाम तिथि आदि भी शुद्ध नहीं लिख सकते थे। काशीवाली प्रति स्पष्ट ही किसी पेशेवर लेखक की लिखी नहीं है।

गोस्वामी जी रामकथा के इतने अनुरागी थे कि उनके जीवन के प्रत्येक क्षण इसी में बीतते थे, उनकी तो धारणा थी—

"कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥"

उन्होंने अपने रामभक्त मित्र टोडरमल को छोड़ और किसी के लिये कभी कोई रचना नहीं की। इसलिये मुझे यह विश्वास नहीं होता कि दत्तात्रेय वाली प्रशस्ति उन्होंने लिखी होगी। परन्तु उनके रामायण के लेखक होने में कोई असंगति नहीं दीखती। उन्हों ने तो वाल्मीकि की वन्दना की है—

"बन्दों मुनि पद कंज, रामायण जिन निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित॥"

आरम्भ में "यद्रामायणे निगदितं" में इसी रामायण का हवाला है, यद्यपि रामचरितमानस, नाना-पुराण-निगमागमसम्मत है और "क्वचिदन्यतोपि" इसका मूल है। गोस्वामी जी ने जितनी कविता की है सभी राम भक्ति पर की है। इन बातों पर ध्यान देकर जब हम देखते हैं कि संवत् १६४१ में काशी जी में बैठकर कोई विद्वान् संस्कृतज्ञ "तुलसीदास" ने वाल्मीकीय रामायण की सुन्दर प्रतिलिपि की तो हमें यह कहने में कोई विशेष युक्ति नहीं दीखती कि यह तुलसीदास कोई और थे जो गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे, जब कि किसी अन्य सुलेखक और विद्वान् समकालीन तुलसीदास की कहीं कभी चर्चा भी सुनने में नहीं आयी। सुतरां, यह न मानने के लिये कोई सुदृढ़ कारण नहीं दीखता कि काशी वाली वाल्मीकीय उत्तरकांड की यह प्रति प्रातः-स्मरणीय मानसकार गोस्वामी तुलसीदास की ही लिखी है। साथ ही, राजा-पुर वाली प्रति के तुलसीदास जी के हाथ की लिखी होने में पूरा भ्रम निश्चित हो जाता है।

तुलसी-सुधाकर की भूमिका में स्वर्गीय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने अपनी यह धारणा प्रकट की थी कि तुलसी-सतसई किसी तुलसी नामक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्य कवि की रचना है, जो शायद कायस्थ था और जो गणित और ज्योतिष के विषय का अनुरागी था। यह धारणा सुधाकर जी की ही है। सर्वसम्मत नहीं है। सुधाकर जी भी इस दूसरे तुलसी की कल्पना काशी जी में नहीं करते। उनके मत से भी सतसईकार तुलसी कहीं पश्चिमीय प्रान्त के थे। इसलिए काशी के सरस्वती-भवन वाली पोथी के लेखक कोई पश्चिम प्रान्तनिवासी दूसरे तुलसीदास थे, यह भी कष्टकल्पना होगी। मैं तो तुलसी-सतसई के दोहों का रचयिता मानसकार गोस्वामी जी को ही मानता हूँ।

गोस्वामी तुलसीदास के हाथ की लिखी सप्रमाण पोथी मेरी राय में सरस्वती-भवन काशी की यही उत्तरकांड वाल्मीकीय रामायण की पोथी है। इसके अन्त में गोस्वामी जी के हस्ताक्षर हैं। उन्हीं की कलम से उनका नाम है। पाश्चात्य देशों में कवि के हस्ताक्षर का बड़ा मूल्य होता है। कई लाख दाम लगते हैं। लोभियों ने वहां जाल बना बनाकर धन कमाया है। हमारे देश में ऐसे अनमोल और दुर्लभ रत्नों का आदर ही नहीं है। चार वर्ष हुए मुझे बंगीय साहित्य परिषत् देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ देखा कि ऐसे दुर्लभ रत्नों का संग्रह हो रहा है। कानपुर के सम्मेलन में हिन्दी का ऐसा ही संग्रहालय स्थापित करने के लिये मन्तव्य भी स्थिर हुआ, परन्तु अब तक राष्ट्रभाषानुरागियों ने इस ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। जितने काम की आशा थी उसका शतांश भी साहित्यिकों की उपेक्षा से न हो पाया।

दोनों पोथियों को देखकर और उनकी लिखावट का ध्यान से अनुशीलन कर मेरी जो धारणा हुई उसे भर सक विस्तार से विद्वज्जनों के समक्ष रखा है। वह स्वयं स्वतंत्र विचार कर सकें इस उद्देश्य से तीन तीन पृष्ठों के चित्र भी दे रहा हूँ। राजापुर वाली पोथी के फोटो-चित्र लाला सीताराम जी की पुस्तक से लिये गये हैं। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा और पंडित गोपीनाथ जी कविराज की कृपा से मुझे काशी वाली पोथी के फोटो—चित्र मिले। इस परिशीलन को सम्भव कर देने के लिए मैं इन सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

—रामदास गौड़।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारा राष्ट्र +

राष्ट्र की मुख्य तथा प्रत्यक्ष पहिचान भाषा की एकता है, अतः भारत के जितने भूमिभाग में हमारी भाषा, अर्थात् हिन्दी या हिन्दुस्तानी, मातृभाषा की तरह बोली और समझी जाती हो वह हमारा राष्ट्र है। इस परिभाषा के अनुसार दक्षिण भारत के तामील, तेलगू, मलयालम तथा कनारी इत्यादि द्राविड़ भाषा बोलने वाले भूमिभाग तो निकल ही जावेंगे; साथ ही आसामी, बंगाली, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा सिन्धी प्रदेश भी छोड़ने पड़ेंगे। पंजाब में नगरों में पढ़े लिखे लोग लिखने पढ़ने में हिन्दुस्तानी का अधिक व्यवहार अवश्य करते हैं, किन्तु साधारण जन समुदाय तथा वास्तव में इन नगरवासियों की भी मातृभाषा पंजाबी है; हिन्दुस्तानी नहीं। पंजाब के गांव का आदमी हिन्दुस्तानी भली प्रकार समझ भी नहीं सकता, बोल सकना तो दूसरी बात है। अतः पंजाब की भी पृथक् गिनती करना पड़ेगी। काश्मीर से लेकर भूटान तक के हिमालय के प्रदेशों में बहुतसी भिन्न भिन्न पहाड़ी भाषायें बोली जाती हैं, जिन्हें हम लोग नहीं समझ सकते; अतः इस संपूर्ण पहाड़ी भूमिभाग को भी इस सिद्धान्त के अनुसार छोड़ना पड़ेगा।

परन्तु पश्चिम में राजपूताने के जैसलमीर राज्य से लेकर पूर्व में बिहार के भागलपुर जिले तक तथा उत्तर में यमुना और सतलज के बीच में

+ इस विषय पर कई लेख मासिक श्रीशारदा के पूर्व अङ्कों में निकल चुके हैं। "राष्ट्र के लक्षण" के आधार पर "क्या भारत एक राष्ट्र है ?" शीर्षक लेख में यह सिद्ध करने का यत्न किया गया था कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। इस अवस्था में "हमारा राष्ट्र" कौन हो सकता है यह वर्त्तमान लेख में दिखलाया गया है। "सूबा हिन्दुस्तान". इस लेख का उपसंहार स्वरूप था, यद्यपि यह पहले ही छप चुका है। —लेखक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अम्बाला नगर से लेकर दक्षिण में मध्यप्रान्त के रायपुर तक के भारत के शेष मध्यभाग के इस प्रकार सहसा विभाग करना सरल नहीं है। साधारण-तया यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भूमिभाग में एक ही भाषा-हिन्दुस्तानी-बोली जाती है, यद्यपि लोगों की ठेठ बोलियों के रूप कुछ कुछ भिन्न अवश्य हैं।

भाषासर्वे के अनुसार इस भूमिभाग में भी तीन या चार भिन्न भाषायें हैं। विहारप्रान्त में दर्भङ्गा की मैथिली तथा पटना की मघई बोलियां और बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी बोली तीनों मिलाकर विहारी भाषा के नाम से एक जगह एकत्रित की गई हैं। राजपूताने की मारवाड़ी, जयपुरी और मालवी बोलियों को राजस्थानी भाषा नाम दिया गया है। शेष मध्य-भाग की भाषा हिन्दी मानी है, यद्यपि इसके भी पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी के नाम से दो भिन्न रूप माने हैं। मेरठ के निकट की हिन्दुस्तानी, पानीपत के चारों ओर की वांगड़ू, मथुरा की व्रजभाषा, कन्नौज की कन्नौजी तथा बुदेलखंड की बुंदेली इन पांच बोलियों को पश्चिमी हिन्दी कहा है तथा अवध की अवधी, बाघेलखंड की बाघेली और छत्तीसगढ़ की छत्तीसगढ़ी इन तीन को पूर्वी हिन्दी नाम दिया गया है। अतः भाषासर्वे के आधार पर भारत के इस विस्तृत मध्यभाग में चार नहीं तो तीन भाषायें अवश्य ही माननी पड़ेंगी। यदि भाषा के स्थान पर बोलियों के आधार पर विभाग करने के सिद्धान्त को मान लिया जाय तब तो पन्द्रह सोलह विभाग करने पड़ेंगे।

किन्तु राजनीति-शास्त्र में राष्ट्र की एक भाषा होने के सिद्धान्त का तात्पर्य भाषा के सिद्धान्त से भिन्न है। व्याकरण के सूक्ष्मरूपों के आधार पर भाषाओं तथा बोलियों का पृथक्करण भाषाशास्त्र का क्षेत्र है और यह वहां ही शोभा देता है। राजनीति-शास्त्र में एक भाषाभाषी लोगों का एक राष्ट्र में होने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि राष्ट्र में छोटे से बड़े तक, तथा बच्चे से बूढ़े तक, सब लोग एक दूसरे की बात को स्वाभाविक रीति से अच्छी तरह समझ सकें, जिससे व्यर्थ को किसी कृत्रिम माध्यम का सहारा लेने की आवश्यकता न पड़े। शासकों की भाषा प्रजा की भाषा से भिन्न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होने से प्रजा सब बातों को ठीक ठीक समझ नहीं सकती। एक राज्य में कई भाषा-भाषी लोगों के बड़े बड़े समुदाय होने से, एक से विचार बनने में, बड़ी वाधा पड़ती है जिससे राष्ट्र में सच्चा ऐक्य नहीं हो पाता।

इस अर्थ में राजस्थान से लेकर बिहार तक तथा सरहिन्द से लेकर छत्तीसगढ़ तक की भाषा एक ही कही जा सकती है। इस सब भूमिभाग में व्यवहार की केवल एक ही भाषा हिन्दुस्तानी है, जिसका यहां की बोलियों से इतना निकट का सम्बन्ध है कि किसी भी बोली के बोलने वाले से इस माध्यम के द्वारा बड़ी सरलता से वार्त्तालाप किया जा सकता है तथा उस मनुष्य की बोली भी बहुत कुछ समझ में आ जाती है। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेश के सम्बन्ध में तो यह प्रायः निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है। मेरठ, रायबरेली और रायपुर के किसान एक दूसरे से भली प्रकार बातचीत कर सकते हैं, किन्तु बिहार और राजस्थान के सम्बन्ध में यह बात यकायक नहीं कही जा सकती। बीकानेर का किसान भागलपुर के किसान की बोली कदाचित् ठीक ठीक नहीं समझ सकेगा। इनकी बोलियां एक दूसरे से इतनी दूर हो गई हैं कि उनमें साम्य कम है और विभिन्नता अधिक। इस सम्बन्ध में भली प्रकार परीक्षा होनी चाहिये। यदि यह बात ठीक निकले तो भाषासर्वे के अनुसार बिहारी और राजस्थानी भाषाओं के भूमिभाग को हिन्दी भूमिभाग के साथ रखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

इस अवस्था में एक बात और करनी होगी। बिहार और राजस्थान को अपनी अपनी बोलियों में से एक एक को छाँटकर उसे अपनी राष्ट्रीय-भाषा बनाना होगा। यह सब जगह होता आया है। हिन्दी के भूमिभाग में मेरठ के चारों ओर की बोली आजकल संपूर्ण हिन्दी-भाषा-भाषियों की सर्वमान्य भाषा हो गई है। प्रायः सौ वर्ष पूर्व साहित्य की दृष्टि से यह स्थान मथुरा की बोली व्रजभाषा को मिला हुआ था।

इस सब से तात्पर्य यह निकला कि भारत के इस बड़े भूमिभाग में पूर्ण रूप से भाषा का ऐक्य नहीं है। प्राचीन "मध्यदेश" की भाषा अवश्य एक-हिन्दी या हिन्दुस्तानी-है, अतः इतने भूमिभाग में राष्ट्र का प्रथम लक्षण-भाषा का ऐक्य-अवश्य घटित होता है। तब इतना भूमिभाग निस्संदेह अपना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राष्ट्र कहा जा सकता है। बिहारी और राजस्थानी भाषाओं के भूमिभागों के सम्बन्ध में अभी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्र के लक्षणों में भाषा की एकता मुख्य बात अवश्य है, किन्तु साथ ही अन्य लक्षणों का होना भी आवश्यक है। भाषा के बाद राज्य के ऐक्य का स्थान है। आजकल वैसे तो बंगाल से लेकर सिन्ध तक तथा पंजाब से लेकर केरल तक का प्रायः संपूर्ण भारत एकही ब्रिटिश शासन में है, किन्तु साथ ही संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों के टक्कर के ब्रिटिश-भारत के प्रान्तिक विभाग इस शासन के ऐक्य में कुछ कठिनता अवश्य उपस्थित करते हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों देशी राज्य भी भारत के इस एक छत्राधिपत्य में कुछ बाधक होते हैं। इन प्रान्तों और देशीं राज्यों के विभागों के कारण हिन्दी-भाषा-भाषी लोग भी एक जगह नहीं है। वे ब्रिटिश भारत के संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और पंजाब तथा मध्यभारत और राजस्थान के कुछ देशीराज्यों में बटे हुए हैं। यह अवस्था तब है जब बिहार और राजस्थान की गिनती नहीं की है। इनमें बिहार तो प्रायः एक प्रांतिक शासन में हो गया है, किन्तु राजस्थान का एक शासन में होना दूर की बात है। राजस्थान में छोटे छोटे शासकों के होने पर भी उन सब के ऊपर एक दृढ़ शासन के बंधन के होने से कार्य्य निकल सकता है। कुछ कुछ ऐसा ही रूप वहां आजकल है भी।

बहुत प्राचीन समय में शासन के कुछ स्वाभाविक विभाग हिन्दी-भाषा-भाषी भूमिभाग में थे। ये जनपद कहलाते थे। किसी नदी के किनारे कुछ दूर तक बसे हुये आर्य्य लोग, जो उस समय की स्थिति के अनुसार एक दूसरे से सुविधा से मिल सकते थे, एक पृथक् केन्द्र मानकर अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लेते थे। यह केन्द्र जनपद की राजधानी होता था। जहां जनपद के लोगों और राजधानी के लोगों की सहायता से जनपद का चुना हुआ राजा मंत्रियों की सहायता से जनपद की रक्षा के लिये तत्पर रहा करता था। रामायण में कोसल जनपद के इस प्रकार के शासन की कुछ झलक देखने को मिलती है।

जब प्रजा-बल क्षीण हो गया तो जनपद तथा पुरवासियों की आवाज शासन में नहीं रही। वंश परम्परा के अनुसार राजा होते थे, चाहे वे योग्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हों या अयोग्य । ये राजा अपने कुल के लोगों तथा कुछ मंत्रियों की सहायता से शासन चलाते थे। प्रजा का हाथ शासन में से हट गया था । महाभारत काल में प्रायः यही अवस्था थी । उस समय इन राजवंशों के लिए जनपद थे, जनपदों के लिये राजवंश नहीं थे। यह इस देश की शासनप्रणाली में पहला किन्तु बहुत बड़ा पतन था जिसका फल अच्छा नहीं हो सकता था। कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में संपूर्ण देश की शक्तियों का इकट्ठा हो जाना तथा प्रजा के अज्ञान, भुलावे अथवा धोके के कारण उस संपूर्ण शक्ति का उपयोग करने की इन थोड़े से लोगों के हाथों में पूर्ण स्वतन्त्रता होने का सदा एक ही फल हुआ है—जो भारतवर्ष में महाभारत के युद्ध में देखने को मिला था तथा आज कल योरप के महायुद्ध में देखने को मिला ।

जनपदों की प्रजा तो शक्तिहीन पहले ही से हो गई थी, महाभारत के बाद ये राजवंश भी बहुत निर्बल होगये । इसका फल यह हुआ कि किसी एक राजवंश के राजा के शक्तिशाली होने पर पड़ोस के अन्य राजवंशों को अपने नाश के रूप में अपनी निर्बलता का कर देना पड़ता था । यह साम्राज्यों का युग था, जिसका उग्र रूप बौद्धकाल से देखने को मिला । बुद्ध भगवान् के समय तक महाभारत में सोलह महाजनपदों के नाम से पृथक् पृथक् राज्य थे । दो तीन सौ वर्ष के अन्दर ही इनका स्वतंत्र अस्तित्व लुप्त हो गया । ये सोलह महाजनपद तथा साथ ही इनके इधर उधर के पड़ोसी राज्य मगध के मौर्य्य राजाओं के अधीन हो गये । जनपदों के इन स्वतन्त्र रूपों की राज पर बनी हुई यह साम्राज्य प्रथा बहुत सराहनीय नहीं कही जा सकती । कुछ काल तक तो जनपदों का प्रथक् अस्तित्व इन साम्राज्यों में प्रान्तों के रूप में चला, किन्तु यह अवस्था बहुत दिनों नहीं रह सकी ।

अपने हाथों से शासन की बागडोर बिलकुल छिन जाने के कारण अब प्रजा की शक्ति दिन प्रतिदिन और भी क्षीण होने लगी । राजवंशों का भी स्थायीरूप नहीं रहा । इस अवस्था में अपनी रगों में पुराने राजाओं का थोड़ा सा भी रक्त रखने का गौरव करने वाले मनचले शक्तिशाली पुरुष अपने बाहु-बल के आधार पर भारत में राज्यों को बनाने और बिगाड़ने का बीड़ा उठाने लगे । इस काल में इन व्यक्तिगत शासकों की इच्छा तथा शक्ति पर ही पड़ोस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के राज्यों की सीमाओं की लकीरें अवलम्बित होती थीं। कैसी अस्वाभाविक बात थी। यह हिन्दू-काल अथवा प्रारम्भिक-राजपूत-काल कहा जा सकता है। इस समय पड़ोस के राज्य को नष्ट करके अपने राज्य में मिला लेना ही प्रत्येक राजा का एक मात्र लक्ष्य होता था। घर में जब ऐसी भारी फूट हो तब बाहर वालों का आना स्वाभाविक ही है।

इसी समय अरब के मुसलमानों ने आक्रमण करना आरम्भ किया। घर में वैसे ही निरन्तर संग्राम हो रहा था, विदेशियों से देश की रक्षा कौन करे। राज्य के छिन जाने से, अपने विलास करने के स्वार्थ में, बाधा पड़ने का भय देख ये राजा अन्त में कुछ सचेत हो गये। ये शक्तिशाली शासक इन आक्रमण-कारियों से सचमुच सिंहों की ही तरह पृथक् पृथक् लड़े, किन्तु अल्प और बुद्धि रखने वाले साधारण मनुष्य भी एक एक कर सिंहों के समुदाय को मार सकते हैं, फिर इन मुसल्मान आक्रमणकारियों के पास तो अपने धर्म प्रचार के अन्धविश्वास तथा स्वर्ण-भूमि भारत को लूटने के स्वार्थ के रूप में दो अन्य प्रबल शक्तियाँ थीं जो इन्हें आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करती थीं। गंगा की घाटी की असहाय प्रजा के पति ये राजा एक एक करके या तो मार डाले गये, या हारकर इन्हों ने हिमालय की अज्ञात घाटियों, विन्ध्य के दुर्गम वनों अथवा राजस्थान की निर्जन मरु-भूमि की शरण ले ली। सच्चे सिंहों के समान इन्हें भी जीता पकड़ लेना सरल न था। इनकी सन्तति अब भी इन बीहड़ स्थानों में देखने को मिल सकती है।

परन्तु गंगा की घाटी की प्रजा अब भी नहीं जगी। पांच छः सौ वर्ष तक इन पर मुसल्मानों का शासन रहा। अन्तिम मुसल्मान शासक आरम्भ के उन आक्रमण करने वाले अरब के मुसल्मानों से भिन्न हो गये थे। इसका कारण था। इन आक्रमण करने वाले अरब के मुसल्मानों ने हमारे देश के बहुत से लोगों को जबरदस्ती मुसल्मानधर्म्मावलम्बी बनाया। धीरे धीरे मुसल्मानी धर्म मानने वाले इन भारतीयों की संख्या बहुत अधिक हो गई। अन्तिम मुसल्मान शासकों के समय में देश में जो सुशासन हो चला था उसका कारण यही था कि देश का शासन प्रायः भारतीय लोगों के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाथ में हो गया था, यद्यपि इनमें से बहुत से मुसल्मानधर्म्मावलम्बी अवश्य थे।

अन्तिम मुसल्मान शासकों ने एक बार फिर बल पकड़ा और इन पुराने सिंहों की सन्तति का सहारा पाकर साम्राज्य स्थापित करने की बीमारी एक बार फिर फैली। इस बार प्रजा को भी बहुत दुःख भोगने पड़े, किन्तु अब तो प्रजा ऐसी निर्जीव हो गई थी कि रौंदे जाने पर भी करवट नहीं लेती थी। गंगा की घाटी का मुसल्मान शासन से अंग्रेजों के शासन में जाना ठीक ऐसा ही था जैसे गिरवी रखी हुई चीज को दस्तावेज बदल कर दूसरे को सौंप देना। क्लाइव ने बंगाल और बिहार के सूबों की दीवानी, कम्पनी बहादुर—को ठीक इसी दस्तावेजी रीति से दिलाई थी।

शासन के पुराने स्वाभाविक विभाग अब प्रायः पूर्ण रूप से नष्ट हो चुके थे। हमारे इन नये विदेशी अंग्रेज शासकों ने जिस क्रम से हमारे पुराने मालिक मुसल्मान अथवा हिन्दू शासकों से ये दस्तावेजें छीनी थीं उसी क्रम से यह उन्हें रखते गये। ब्रिटिश भारत के प्रान्त का विभाग इसी सिद्धान्त के अनुसार—यदि इसे सिद्धान्त कहा जा सकता हो—हुआ है। हमारे यहां के भोलेभाले लोग तो विदेशियों के इन मनमाने क्रम से बनाये हुये प्रान्तों पर ही गौरव करने लगे हैं। मध्यप्रान्त अपने में कुछ ऐतिहासिक ऐक्य अनुभव करने लगा है, अजमेर का प्रान्त अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाना पसन्द करे तो कुछ आश्चर्य नहीं। देहली के नन्हे से प्रान्त की प्रजा विदेशियों के भारत साम्राज्य के केन्द्र होने पर ही गौरव करने लगी है। हमारी गिरी हुई अवस्था की यह पराकाष्ठा है।

गंगा की घाटी के लोगों का भविष्य का राजनैतिक रूप तथा उसका विस्तार यहां के पुराने जनपदों या राज्यों के ही ठीक अनुरूप हो यह संभव नहीं। काल तथा स्थिति की विभिन्नता को भुला देना उचित न होगा। एक समय था जब देश में प्रत्येक गाँव अलग अलग अपनी खाई और कच्ची दीवार के सहारे अपनी रक्षा कर लेता था, उस समय लोग तीर कमान और तलवारों से लड़ते थे। अब आजकल सत्तर मील तक मार करने वाली तोपों और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हवाई जहाजों के वैज्ञानिक युग में फ्रान्स और इंग्लैंड जैसे सुव्यवस्थित शक्ति रखने वाले विशाल राष्ट्र भी अपने को सुरक्षित नहीं समझते, हम जर्जरित लोगों का तो कहना ही क्या है। हमारे नये शासन का रूप विस्तार में तो यहां के प्राचीन जनपदों से बड़ा होगा ही शासन प्रणाली में भी आवश्यकतानुसार उनसे भिन्न होगा। जो हो वर्त्तमान अवस्था अब बहुत दिनों नहीं ठहर सकती। हिन्दीभाषाभाषी लोगों का शासन के लिये एक स्वाभाविक विभाग—चाहे वह इस समय ब्रिटिश भारत के प्रान्त के रूप में हो अथवा कांग्रेस के सूबे के रूप में हो—शीघ्र ही बनना चाहिये।

यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्र का दूसरा मुख्य लक्षण—एक राज्य का होना—हिन्दीभाषाभाषी लोगों पर बंगाल इत्यादि की तरह एक प्रान्त के रूप में भी अभी घटित नहीं होता। तभी तो अपने राष्ट्र के स्वरूप का दर्शन भी नहीं होता। भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने पर ही शासन विभाग के ऐक्य से होने वाले लाभों का कुछ कुछ दिग्दर्शन हो सकेगा।

जब एक भाषा होने के स्पष्ट ऐक्य को ही अपने लोग नहीं समझते तो हानि-लाभ की एकता का सूक्ष्म प्रश्न तो और भी जटिल है। इस संबंध में इस समय इतना ही कहना बहुत होगा कि हिन्दी-भाषा-भाषियों का हानि-लाभ—चाहे वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक किसी प्रकार का हो—भारत के अन्य भाषा-भाषियों से पृथक् है और रहेगा। हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन काम आवेगा, बंगीय साहित्य परिषद से काम नहीं चलेगा। अपने यहां की स्त्रियों को शिक्षित करने के लिये महाराष्ट्र के महिला-विद्यालय को धन देने से कोई विशेष लाभ नहीं। हम लोगों के धन के दुरुपयोग को मद्रास की कौंसिल नहीं रोक सकेगी, इसके लिये अपनी कौंसिलों में शक्तिशाली होकर लड़ना पड़ेगा। यहां के मन्दिरों के सुधार के लिये हमी लोगों को अग्रसर होना पड़ेगा, नानकाना के पंजाबी वीरों से सहायता मिलने के ध्यान में हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से लज्जा मालूम पड़नी चाहिये।

यह सच है कि आज कल एक विदेशी शासन में होने के कारण भारत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के सब भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की चोटियें एक में बंधी हुई हैं। इस रस्सी के खिंचने या ढीले होने से जो दुःख या सुख होता है उसका अनुभव आज कल प्रायः सब लोगों को साथ ही होता है। किन्तु जिस दिन यह रस्सी कटी उस दिन फिर इसी रूप में बंधे खड़े रहने में शोभा नहीं होगी। हम सब लोग स्वतंत्रता पूर्वक एक धर्म में रहते रहें यह दूसरी बात है। कदाचित् यह आवश्यक भी हो।

राष्ट्र के लक्षणों में देश की एकता का अर्थ केवल इतना ही है कि देश के एक भाग से दूसरे भाग में आने जाने में कठिनता न होती हो। आजकल विज्ञान की उन्नति के कारण आने जाने तथा समाचार पाने की अनेक सुवि-धायें हो गई हैं, अतः आज कल के देश, पहले के देशों से बड़े हों तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। देश के ऐक्य में या तो दूरी बाधक होती है या स्वाभाविक दुर्गम बाधायें। तिब्बत और गंगा की घाटी एक देश नहीं कहे जा सकते, क्योंकि बीच में हिमालय का दुर्गम प्राकार है। बंगाल और सिन्ध एक देश नहीं हो सकते, क्योंकि ये एक दूसरे से बहुत दूर हैं, यद्यपि बीच में कोई प्राकृतिक बाधा नहीं है। इस दूरी अथवा प्राकृतिक बाधा का प्रभाव लोगों पर पड़ता है, इसीलिये देश के ऐक्य के सिद्धान्त को भी राष्ट्र के लक्षणों में मानना पड़ता है। जिस समय उड़ीसा में सहस्रों स्त्री पुरुष और बच्चे भूख से तड़प तड़प कर प्राण देते हों उसी समय धन-धान्य-पूर्ण गुज-रात में लोग विलास में समययापन कर रहे हों यह बिलकुल संभव है। इसमें देश की विभिन्नता ही कारण हो सकती है। एक देश में यह बात संभव नहीं। जितने लोगों पर सुख दुःख का प्रभाव प्रायः एकसा तथा एक साथ पड़ता हो उतने ही लोगों में आपस में सच्ची सहानुभूति तथा ऐक्य हो सकता है।

उत्तर भारत में इस प्रकार के एक देश का रूप स्थिर करने के लिए हिमालय प्रदेश को तो छोड़ देना ही पड़ेगा। शेष मैदान में भी पंजाब की भूमि भी भिन्न है। गंगा का मैदान अवश्य एक है। हिमालय से लेकर विंध्य की पथरीली भूमि के आरम्भ होने तक इस मैदान की चौड़ाई तो अधिक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं है, किन्तु लंबाई अवश्य अधिक है। भागलपुर के आगे जिस स्थान से गंगा समुद्र से मिलने के लिये दक्षिण की ओर झुकती हैं, गङ्गा के मुहाने का उतना समभाग बंगाल देश के रूप में पृथक् है ही, किन्तु शेष अंश के भी कदाचित् दो भाग करना उत्तम होगा। ये दो भाग आज कल संयुक्तप्रान्त और बिहार के रूप में देख पड़ते हैं, यद्यपि इनको सीमा वैज्ञानिक रीति से नहीं बटी है। यह उसी दस्तावेजी क्रम से बनी हुई है जो अब आगे बहुत दिनों तक मान्य नहीं रह सकता।

गंगा के मैदान के दक्षिण का विन्ध्य का भूमि-भाग प्राकृतिक दृष्टि से इस मैदान से भिन्न अवश्य है, किन्तु गंगा की घाटी के लोगों के लिए यह दुर्गम नहीं है। आगरा या प्रयाग से ग्वालियर, रीवां अथवा सागर या जबलपुर पहुंचना आजकल के वैज्ञानिक युग में ऐसा ही सरल है जैसे आगरे से प्रयाग पहुँचना। अतः विन्ध्य के इस भाग को गंगा की घाटी से पृथक् भिन्न देश समझना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त यहां के लोग गंगा की घाटी के ही रहने वाले हैं। ये अभी कुछ ही दिनों से वहां जाकर बसे हैं। भाषा, रीति-रिवाज, धर्म्म तथा अन्य सब बातों में ये दोनों एक ही हैं। नर्मदा के दक्षिण का कुछ भाग और महानदी की आरम्भ की घाटी, छत्तीसगढ़ प्रदेश अवश्य कुछ दूर पड़ता है, किन्तु क्योंकि यहां भी हम ही लोग बस रहे हैं, अतः इन प्रदेशों का भी साथ रहना आवश्यक है। क्या छत्तीसगढ़ के लोग निकट होने के कारण उड़ीसा या आन्ध्र लोगों के साथ रहना पसन्द करेंगे? यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि देश की एकता राष्ट्र का चौथा तथा अन्तिम लक्षण है। इसके पूर्व एक से एक अधिक आवश्यक तीन अन्य लक्षण भी हैं।

राजस्थान का भूमिभाग कुछ नहीं तो देशी राज्यों की शासन-प्रणाली की एकता के कारण कुछ भिन्न मालूम पड़ता है। गंगा की घाटी से यह प्राकृतिक रूप में भी भिन्न है। अरावली के उस पार मारवाड़ का देश तो बिलकुल ही पृथक् है। यद्यपि राजस्थान के लोग हमारे ही भाई बन्धु हैं जो मुसल्मानों के आक्रमण के समय में अपने पूर्वपुरुषों की भूमि-गंगा की घाटी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को छोड़कर यहां जा बसे थे, किन्तु कई सौ वर्षों से पृथक् रहने के कारण इनकी रहनसहन, वेषभूषा, भाषा तथा सामाजिक और धार्मिक विचारों में बड़ा अन्तर हो गया है। शासनप्रणाली की विभिन्नता को तो ऊपर बताया ही जा चुका है। इस कारण से और भी बहुतसी बातों में भेद हो जाया करता है। संयुक्तप्रान्त के किसानों की अवस्था सुधारने के प्रश्न को राजस्थानी भाई अपने देश में रहते हुये ठीक ठीक नहीं समझ सकते।

भाषा, राज्य, हानिलाभ तथा देश इन चार ऐक्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं जो राष्ट्र के बनाने में सहायक होती हैं। इनमें से प्रथम वर्ग की एकता हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों में अवश्य पाई जाती है। हम लोग साधारणतया प्रायः एक ही से शरीर की बनावट के हैं। गंगा की घाटी में पश्चिम से पूर्व की ओर धीरे धीरे अन्तर होता गया है। योरपीय विद्वानों के अनुसन्धान के अनुसार हम हिन्दुस्तानी लोग आर्य्य-द्राविड़ वर्ग के हैं। राजस्थान के लोगों की गिनती आर्य्यवर्ग में की गई है। बिहार तथा वर्त्तमान मध्यप्रान्त में भी प्रायः आर्य्य-द्राविड़-वर्ग के ही लोग हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इनमें क्रम से मंगोलियन तथा द्राविड़ अंश अधिक होता गया है।

धर्म्म के सम्बन्ध में हम लोगों के यहां हिन्दू और मुसल्मान धर्म्मों का प्रश्न बड़ा जटिल है। धर्म का प्रभाव भिन्न-भिन्न धर्म्मानुयायी लोगों की भाषा, राज्य तथा हानिलाभ इत्यादि सब बातों पर पड़ता है। अपने देश में हिन्दू मुसल्मान दोनों के आदर्श इन सब बातों में थोड़े बहुत भिन्न तो हैं ही, ऊपर से स्वार्थी लोगों के प्रोत्साहन से इस पृथकता ने और भी स्पष्ट रूप धारण कर लिया है। इस भेद का बनावटी अंश तो निकाला जा सकता है किन्तु स्वाभाविक विभिन्नता का कुछ अंश अवश्य रह जायगा। इसका कोई उपाय नहीं, सिवा इसके कि ये दोनों धर्म्म एक हो जावें। यह बात पूर्णतया असंभव नहीं है। एक समय हमारे संपूर्ण देश के लोग बौद्धधर्म्मावलम्बी हो गये थे, किन्तु अब तो बौद्ध आदमी ढूंढने पर भी कठिनता से मिलेगा। धर्म्म का ऐक्य राष्ट्रनिर्माण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है, यद्यपि इसके होने से लाभ बहुत हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक अन्तिम बात और है जो इन सब बातों की आत्मा है। यह है लोगों में इस भाव का होना कि हम एक हैं। इस भाव की नीव उपर्युक्त अन्य बातों पर निर्भर है। उन बातों के दृढ़ होने से इसकी भी पुष्टि होती है; किन्तु इस भाव के जाग्रत होने के कारण राष्ट्र के लोगों को सुख दुःख एक साथ उठाना पड़ता है। बंगाल में राष्ट्रीयता के लक्षण होने पर भी इस भाव की जनता में जागृति बंगभंग के आन्दोलन से हुई थी। इस समय अपने को एक समझने का यह भाव हिन्दी-भाषा-भाषियों में नहीं है। अतः इस भाव को जाग्रत करने के लिये सब से प्रथम यह नितान्त आवश्यक है कि भाषा, राज्य, हानिलाभ तथा देशादि की एकताओं को पुष्टकर इस भाव की नींव सुदृढ़ करली जाय। तभी अवसर मिलने पर इस भाव का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक विभिन्नता तथा अन्य सब बातों को ध्यान में रखते हुए भारत के इस वृहत् मध्यभाग को प्रायः तीन भागों में विभक्त करना उपयुक्त होगा। राजस्थान सब प्रकार से पृथक् है। बिहार का भी पृथक् रहना ही उत्तम होगा। शेष गंगा की घाटी और दक्षिण के विन्ध्य का भाग जिसमें हिन्दी-भाषा-भाषी लोग रहते हैं, एक में रहने चाहिये।

यह मानना पड़ेगा कि बंगाल, आन्ध्र, गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि की तरह भाषा, राज्य, हानिलाभ तथा देश की एकता अभी हमारे राष्ट्र में उतनी स्पष्ट नहीं है। यहां के लोग अपनी एकता को अभी अनुभव नहीं करते। इसका कारण यही है कि हम लोग बहुत समय से पददलित थे और अब भी भारत के अन्य लोगों से इतने पिछड़े हुए हैं कि अभी तक दूसरों के अधीन रहने में अपमान नहीं समझते। दूसरों के साथ में रहते रहते हमारा व्यक्तित्व नष्ट हो गया है। इस राष्ट्रीय व्यक्तित्व का फिर से उद्धार होना आवश्यक है। इसके लिए सब से प्रथम भाषा के स्वाभाविक आधार पर हम सब लोग एक शासन में हो जावें तब ही अन्य बातों में सुदृढ़ हो सकते हैं।

पश्चिम में अम्बाला से लेकर पूर्व में प्रयाग के आगे तक तथा हिमालय और विन्ध्य के बीच के हम हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों का एक शासन में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होना आवश्यक है। शासन की यह एकता वर्तमान समय में एक प्रान्त या सूबे के रूप में अवश्य ही प्रकट होनी चाहिए। अपने हानिलाभ के ऐक्य को समझना तथा अपने देश पर गर्व करना सीखना हम हिन्दी-भाषा-भाषियों के उद्धार के लिए अनिवार्य है। यही हमारा सच्चा राष्ट्र हो सकता है।

धीरेन्द्र वर्म्मा।

कविता-कौमुदी

(तीसरा भाग)

जब मैंने सुना कि कविता-कौमुदी के तीसरे भाग में संस्कृत कवियों के काव्य का संग्रह किया गया है, तब मैं उसके देखने के लिए बहुत उत्सुक हो उठा। अकस्मात् मैंने अपने एक मित्र के पास उसे देखा। कुछ पृष्ठ उलट पलट कर अवलोकन करने पर मेरा हर्ष शोक में परिणत हो गया। कौमुदी में भी संस्कृत-कविता के अर्थ का ऐसा अँधेरा! जब कविता-कौमुदी का प्रारंभ ही 'अकालजलद' से किया गया है, तब भला कहां तक बौछार न पड़े?

"ढोल का साथी डंडा," प्रकाशक महाशय भूमिका में लिखते हैं:—"खेद है कि प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ ज्यों की त्यों रह गयी हैं।" मेरी समझ में तो यहां 'कुछ' के स्थान में 'बहुतसी' होना चाहिये। यदि संस्कृत श्लोकों की अशुद्धियों का शुद्धिपत्र बनाया जाय तो लगभग २५ पृष्ठ रंग जायँगे। ऐसे काव्य-संग्रह का हिन्दी पाठकों के सम्मुख रखना बड़ा दुःसाहस है। यह उनकी मातृभाषा तो है नहीं जो उनसे शुद्ध की जा सकेगी। वे इन अशुद्धता-पूर्ण श्लोकों को कंठस्थ कर यदि किसी पठित समाज में दुहरावेंगे तो बेचारों का उपहास हुए बिना न रहेगा।

श्लोकों के अर्थ में भी अशुद्धता की भरमार है। न जाने कितनी जगह आप अर्थ के स्थान में अनर्थ कर बैठे हैं। यदि सम्पूर्ण श्लोकों का विचार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया जाय तो सम्भवतः कविता-कौमुदी से तिगुना ग्रन्थ बन जायगा। किसी को इतना अवकाश ही कहां है ? अतः उदाहरण के लिए यहां कुछ प्रसिद्ध कवियों के ही इने गिने श्लोकों का उल्लेख किया जाता है।

भट्टनारायण

कविता-कौमुदी, पृष्ठ १८५।

यो यः शस्त्रं विभर्ति स्वभुजगुरुमदः पांडवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुराधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्त तस्य स्वमिह जगतामन्तकस्यांतकोऽहम् ॥

"पांडवों की सेना में जो जो शस्त्र धारण करते हैं जिस जिस को अपनी भुजाओं का गर्व हो, पाञ्चाल गोत्र में जो कोई बालक जवान या गर्भ में हो, जो उस कर्म के (द्रोणाचार्य के मारे जाने के) साक्षी—हो और युद्ध में जो मेरा सामना करे, क्रोधान्ध होकर मैं उनका (क्रोध से वाक्य पूर्ति करना भूल गये) यमराज का भी यमराज हूँ।" (अश्वत्थामा की उक्ति)

मेरे मतानुसार—

यो यः शस्त्रं विभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां-
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यांतकोऽहम्।

"अपनी भुजाओं (के बल) का विशेष घमंड रखते हुए पाण्डवों की सेना में जो कोई शस्त्र धारण करता है, पाञ्चालगोत्र में जो कोई बालक युवा वा गर्भ में है, रणक्षेत्र में विचरण करते समय जो कोई मेरे विरुद्ध खड़ा होता है और उस कर्म (मेरे पिता के बध) का जो कोई साक्षी है, वह स्वयं लोकों का अन्तक (नाशक) ही क्यों न हो, मैं उसका अन्तक (नाशक) हूँ"। यहां 'स्वयं जगतामन्तकस्य' तस्य का विशेषण है।

वाक्य पूरा है, अधूरा नहीं।

क० कौ० पृ० १८६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दतु पाण्डुतनयाः सह माधवेन
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुता सभृत्याः ।

"शत्रुओं के नाश से विरोधाग्नि बुझ जायगी; अतएव पाण्डव कृष्ण के साथ प्रसन्नता पूर्वक रहें। रक्त से भूमि को शोभित करने वाले क्षत शरीर कुरुराज के पुत्र अपने भृत्यों के साथ स्वर्गस्थ हों।" (भीम की उक्ति)

मेरे मतानुसार—

'सुता' के स्थान में 'सुताः' चाहिये। यहां उत्तरार्ध का दूसरा अर्थ होता है और वही मुख्य है, क्योंकि उसी को नेपथ्य में सुनकर क्रुद्ध भीमसेन ने प्रवेश किया है। आपने इस श्लोक को भीम की उक्ति बतलाई है तब भला दूसरा अर्थ कैसे लगे ? जरा पुस्तक खोल कर देखें यह सूत्रधार की उक्ति है न कि भीम की। दूसरा अर्थः—

"जिन्होंने अनुरक्त पाण्डवों को भूमि दे दी है, लड़ाई झगड़ा तोड़ दिया है; वे कौरव अपने सेवकों सहित आनन्द मनावें।"

इसे सुन भीम क्रुद्ध हो यह कहते हुए प्रवेश करते हैं:—

रे नटों में अधम ! मेरे जीते ही कौरव आनन्द मनावें।" इत्यादि।

क० कौ० पृ० १८७

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात् किं मे तवेवायुधाम्
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत्।

"गुरु-शाप के कारण क्या तुम्हारे ही समान मेरे अस्त्र निर्वीर्य हैं, भय से रण छोड़ कर तुम्हारे ही समान मैं भी भाग आया हूँ, स्तुति करने में निपुण सारथियों के वंश में मैं भी जन्मा हूँ, एक क्षुद्र शत्रु से किये अनिष्ट का क्या मैं ही शस्त्रों से नहीं आंसुओं से प्रतीकार कर रहा हूँ।" (अश्वत्थामा की उक्ति कर्ण के प्रति)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेरे मतानुसार—

'तवेवायुधम्' और 'प्रतिकरोम्यस्त्रेण' चाहिए।

"क्या गुरु के शाप के कारण तुम्हारे अस्त्र के समान मेरा अस्त्र भी निर्वीर्य है ? क्या तुम्हारे ही समान मैं भी इसी समय युद्ध को छोड़कर भाग आया हूँ ? क्या मैं स्तुति और वंशकीर्तन को जाननेवाले सारथियों के कुल में उत्पन्न हुआ जो कि एक क्षुद्र शत्रु से किये अनिष्ट का आंसुओं से प्रतीकार करूं न कि अस्त्र से।" भाव यह है कि तुम्हारा अस्त्र परशुराम से शापित है। तुम रण में पीठ दिखाते हो। एक नीच वंश में तुम पैदा हुए हो। अतएव आंसुओं से तो तुम्हीं को प्रतीकार करना चाहिये। क्योंकि उपर्युक्त कारण से शस्त्र-द्वारा कुछ करही नहीं सकते।'यत्=जो' पद का आप के अर्थ में पताही नहीं है। इसी पद से असली भाव खुलता है। दूसरे और तीसरे पद के प्रश्नार्थक वाक्यों के स्थान में विधानार्थक का प्रयोग किया है। दूसरे चरण से श्लोक का अर्थ बिल्कुल अशुद्ध है।

भवभूति

क० कौ० पृ० १६४

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।

"जिसका व्यवहार सादा होता है उसकी शुद्धता कैसे समझी जाय। स्त्री और वाणी की शुद्धता के विषय में प्रायः लोग सन्देह करते हैं।"

मेरे मतानुसार—

यहां तो आपने अर्थ करने में कमाल किया है। यदि परीक्षा में ऐसा लिखा होता तो 'शून्य' से ही सत्कार किया जाता। महात्मा गांधी और पण्डित मदनमोहन मालवीय आदि का व्यवहार सादा है तो आप के अर्थ के अनुसार इनमें शुद्धता नहीं हो सकती!

श्लोक का भावार्थः—

"दूसरों द्वारा की हुई निन्दा की कुछ भी परवा न करते हुए मनुष्य को अपनीयोग्यता के अनुसार शक्ति भर कर्तव्य पालन करना चाहिये।" भला मनुष्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निन्दा से कहां बच सकता है। लोग स्त्रियों की शुद्धता में जिस प्रकार दुर्जनता प्रकट करते हैं ठीक उसी प्रकार वाणी की शुद्धता में भी किया करते हैं। स्त्री कितनी ही सदाचारिणी क्यों न हो, मनुष्य अवश्य उसके आचरण में शंका कर बैठते हैं। यही दशा निबन्धों की भी हुआ करती है।

भारवि

क० कौ० पृ० २१२।

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणम्
गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते
गुणाधिके पुंसि जनोऽनुरज्यते
जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ।

"जितेन्द्रिय होना विनय का कारण है। गुण से विनय की वृद्धि होती है, अधिक गुणवान् से मनुष्य प्रेम करते हैं। और मनुष्यों के प्रेम से ही सब सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं।"

मेरे मतानुसार—

"इन्द्रियों को जीतना विनय का कारण हैं। विनय से गुण की वृद्धि होती है। अधिक गुणवान् पर मनुष्य प्यार करते हैं और सचमुच में सब सम्पत्तियां मनुष्यों के प्यार करने से ही मिलती हैं। इसलिए प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह मनुष्य के अनुराग को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। वह जितेन्द्रिय हो जाय; बस शेष बातें आप से आप सिद्ध हो जायँगी।" यहां 'विनय से गुण की वृद्धि होती है' होना चाहिये, न कि उल्टा 'गुण से विनय की वृद्धि,।

माघ

क० कौ० पृ० २४१

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः।
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु-
र्वहति कृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥

कुमुदिनी मुकुलित हो गयी। रात्रि का भी अन्त हो गया और वे समस्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"तारकाएँ नष्ट होगयीं। इस कारण अपनी स्त्री से रात्रि से प्रेम रखनेवाला चन्द्रमा कृश हो गया है, वह शोक से शोभारहित अङ्ग धारण कर रहा है।"

मेरे मतानुसार—

वकार के ऊपर रेफ चाहिये।

"कुमुदिनी शीघ्र ही मुकुलित हो गयीं। हा! रात्रि भी क्षय को प्राप्त हो गयी। वे समस्त तारकाएँ चली गयीं। इसलिए चन्द्र जिसे स्त्रियां बहुत ही प्यारी हैं, शोक से चिन्ता करते हुए नितान्त कृश और कान्तिहीन शरीर को धारण किये है।" भाव यह कि एक दो स्त्रियों का नाश होता तो बेचारा चन्द्र किसी प्रकार धैर्य भी धरता। यहां तो एकाएकी सभी भार्याओं का दुःख उमड़ पड़ा। तब भला धैर्य कैसे बँधे? अतः चन्द्र चिन्ता के कारण क्षीण हो गया है। उसके मुख पर पीलेपन ने अपना अधिकार जमा लिया है। प्रातःकालीन चन्द्र की यह दशा होती ही है। यहां कुमुदिनी आदि स्त्रियों के नाश को इस दशा का हेतु बतलाया है। इससे उत्प्रेक्षा अलंकार की सिद्धि होती है। आपने 'दयितकलत्रः' का अर्थ 'अपनी स्त्री से रात्रि से प्रेम रखने वाला' किया है। इसका अर्थ 'जिसे स्त्रियां प्यारी हैं' होना चाहिये। क्योंकि केवल रात्रि ही स्त्री नहीं मानी गयी, किन्तु कुमुदिनी और तारकाएँ भी स्त्रियों में गिनी गयी हैं।

क० कौ० पृ० २४२

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं
चकर च किल चाटु प्रौढयोपिद्वदस्य।
विदितमिति सखीभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयान्हि वीडितं मुग्धवध्वा॥

"मैं उन्मत्तावस्था में उसके सामने बहुत बोलती रही क्या? प्रौढ़ा स्त्रियों के समान मैंने उसके सामने व्यवहार किया क्या? सखियों के द्वारा रात्रि की बातें जानकर नशा उतरने पर मुग्धवधू को बड़ी लज्जा आयी।"

मेरे मतानुसार—

'व्यपगतमदयाह्नि' चाहिये। अर्थ में नितान्त भद्दापन है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मैं मदमाती पति के सामने बहुत बोलती रही। प्रौढ़ स्त्री के समान मैंने उसे बहुत से प्रिय बचन सुनाये। रात्रि के इस वृत्तान्त को सखियों ने जान लिया, यह विचार दिन के समय मदरहित (क्योंकि दिन के समय काम का नशा प्रायः उतर जाता है।) मुग्धवधू लज्जित हो गयी।" जब मनुष्य को नशा चढ़ा रहता है, तब वह न जाने क्या क्या बक जाता है। नशा उतरने पर जब कोई उससे उन बातों की चर्चा करता है, तब वह लज्जित हो जाता है। आप के अर्थ में 'चाटु=प्रिय वचन' का लोप है। 'बोलती रही क्या ?' 'व्यवहार किया क्या ?' ईश्वर जाने ये दोनों 'क्या'कहां से आगये।

श्रीहर्ष

क० कौ० पृ० ३४७

स्वरिपुतीक्ष्णसुदर्शनविभ्रमात्किमु विधुं ग्रसते स विधुंतुदः।
निपतितं वदने कथमन्यथा बलिकरम्भनिभं निजमुज्झति ॥

"मालूम होता है कि राहु विष्णु के सुदर्शन चक्र के धोखे में आकर चन्द्रमा को नहीं निगलता। अतएव वह अपने मुँह में आये हुए को भी छोड़ देता है।"

मेरे मतानुसार—

"क्या राहु चन्द्र को अपने शत्रु (विष्णु) का सुदर्शन चक्र समझ कर लीलता है ? वास्तव में यही बात जान पड़ती है। नहीं तो अपने बलि करम्भ ‡ (दही से सने हुए सत्तू) के सदृश दिखने वाले इस चन्द्र को मुख में डाल कर भी कैसे उगल देता। कभी का खा गया होता। वह इसे चक्र समझ कर लील तो लेता है परन्तु तालु के छिद जाने के भय से शीघ्र ही छोड़ देता है।" आप के अर्थ में 'करम्भ' आया ही नहीं। 'निगलता है' के स्थान में आपने लिखा है 'नहीं निगलता।' इतना अंधेर ? विधानार्थक के स्थान में निषेधार्थक वाक्य का प्रयोग किया गया है। इत्यादि।

---

‡ 'करम्भं राहवे दद्यात्' इस शास्त्र के अनुसार राहु को करम्भ (दही से सने हुए सत्तू) की बलि देना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रूफ की अशुद्धियों के अतिरिक्त इस टीका में अर्थ की ऐसी अनेक अशुद्धियां हैं, जिन्हें देख यह जान पड़ता है कि श्लोकों की टीका किसी साहित्याचार्य ने नहीं की, क्योंकि उस मनुष्य से जो कि साहित्याचार्य-पद के योग्य है कदापि ऐसी त्रुटियां न होंगी। दूसरे संस्करण में केवल प्रूफ की गलतियां ही सुधार कर कार्य समाप्त न कर दिया जाय, किन्तु, अर्थ भी बहुत विचार कर लिखा जाय।

आगे यदि यह पुस्तक सर्वांग-सुन्दर निकली तो निःसन्देह हिन्दी पाठकों को बड़ा लाभ होगा। यह समालोचना केवल इसी दृष्टि से की गई है कि द्वितीय संस्करण में किसी सुयोग्य विद्वान् की सहायता से अर्थ की सब अशुद्धियां दूर कर दी जायँ।

सुन्दरलाल शुक्ल

JAGADGURU VISHWARADHYA SIMHASAN JNANAMANDIR LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 8395

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इश्तहार

चूंकि इश्तहार नम्बर $\frac{२९९४}{१५४३-१२}$ मोरखे ५ नम्बर १९२३ में यह ऐलान किया गया है कि राजा राम रघुराज सिंह बल्द राजा अजीतसिंह साकिन सलैया तहसील सिहोरा जिला जबलपुर व दमोह की जायदाद की निगरानी कोर्ट आफ वार्ड्स ने इख्तियार की है। लिहाजा इस इश्तहार की रू से एक्ट २४ सन् १८९९ की दफा १२ (१) के मुताबिक यह नोटिस दिया जाता है कि जिन शख्सों का राजा राम रघुराज सिंह मजकूर पर या उनकी जायदाद गैर मनकूला की निस्बत कोई दावा हो तो उन्हें चाहिये कि अपने दावे तहरीरी इस नोटिस के गज़ट मध्यप्रदेश में मुश्तहर होने की तारीख से ६ माह के अन्दर कोर्ट आफ वार्ड्स, जिला जबलपुर के पास पेश करें।

हर एक ऐसा दावा जो इस तौर पर पेश न किया जाय उसकी निस्बत एक्ट मजकूर की दफा १२ (२) के मुताबिक कुल गरज़ों और कुल मौकों के लिये कोर्ट आफ वार्ड्स के जमाने में या बाद अजां यह समझा जायगा कि दावा मजकूर बजाब्ता अदा हो चुका है।

मुकाम
जबलपुर ताः १ दिसम्बर १९२४

दस्तखत एफ. एम. ए. स्लोकाक.
कमिश्नर
किस्मत जबलपुर।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिक्षा-मीमांसा

शिक्षा-संसार में हिन्दी का एक अभूत पूर्व ग्रन्थ ।

लेखक—पण्डित गोपालदामोदर तामसकर, एम. ए., एल. टी.

आगामी मास में छपकर प्रकाशित हो जायगा ।

खास रियायत ।

जो सज्जन फरवरी १९२५ के अन्त तक आर्डर भेज देंगे उन्हें उक्त ग्रन्थ पौनी कीमत में मिलेगा । चूकिये नहीं ।

यदि आप जानना चाहते हैं कि शिक्षा क्या है, बालकों को कैसी शिक्षा दी जाय, बालकों की शिक्षा के प्रति माता-पिता और राष्ट्र का क्या कर्तव्य है, वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में क्या दोष हैं, बालकों को थोड़े समय में, थोड़े परिश्रम से, अधिक ज्ञान कैसे दिया जा सकता है, इत्यादि, इत्यादि बातें यदि आप जानना चाहते हैं तो आज शिक्षा-मीमांसा की एक प्रति का आर्डर दे दीजिए ।

शिक्षकों के अत्यन्त काम की चीज़ है ।

इस पुस्तक के पढ़ लेने से शिक्षकों को अब और पुस्तकों के देखने की आवश्यकता न रहेगी । जो बातें बीसों पुस्तकों के पढ़ने से न मिली होंगी वे केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से प्राप्त हो जायँगी । शिक्षकगण इसमें मनोविज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, शिक्षा-प्रणाली आदि अनेक उपयोगी बातें पावेंगे ।

प्रत्येक शिक्षक, प्रत्येक शाला और प्रत्येक माता-पिता को इस ग्रन्थ की एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए ।

स्मरण रखिए ।

२८ फरवरी २५ तक ही रियायत है । उसके बाद पुस्तक पूरी कीमत में मिलेगी ।

पता—प्रबन्धक,
राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर,
जबलपुर ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शारदा-पुस्तक-माला

का

दसवाँ ग्रन्थ

संसार को भारत का सन्देश ।

मूल्य १।।।)

हिन्दी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' की सम्मति पढ़िए:—

"प्रोफेसर मैक्समूलर ने भारत के सम्बन्ध में व्याख्यान दिये थे। उनसे भारतीय सभ्यता का महत्व अच्छी तरह प्रकट होता है। वे व्याख्यान अंग्रेजी में पुस्तकाकार प्रकाशित हो गये हैं। पुस्तक का नाम है—India what it can teech us-यह उसी का अनुवाद है। अनुवादक हैं श्रीयुत कन्नोमल एम० ए०। अनुवादक अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं के प्रसिद्ध लेखक हैं। अतएव यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि उनके अनुवाद में भूल होने की सम्भावना नहीं है। भाषा सरल और सुन्दर है।

"पुस्तक में सात परिच्छेद हैं। पहले परिच्छेद में यह बतलाया गया है कि पाश्चात्य विद्वान भारत से क्या सीख सकते हैं। दूसरे परिच्छेद में हिन्दू-जाति की सत्यनिष्ठा का वर्णन है। तीसरे में संस्कृत-साहित्य का महत्व बतलाया गया है। चौथे परिच्छेद में उन आक्षेपों का उत्तर दिया गया है जो वैदिक साहित्य पर पाश्चात्य विद्वानों-द्वारा किये गये थे। अन्तिम तीन परिच्छेदों में वेद, वैदिक देवता और वेद और वेदान्त की चर्चा की गई है। यही परिच्छेद सब से सधिक महत्व के हैं। यद्यपि यह पुस्तक पाश्चात्य विद्वानों के लिए लिखी गई है तथापि इससे हम लोग भी अनेक बातें सीख सकते है। इसमें सन्देह नहीं कि इस अनुवाद से हिन्दी-साहित्य की वृद्धि हुई है।"

ऐसे उत्तम ग्रन्थ की एक प्रति अपने पास अवश्य रखिए। "श्रीशारदा" के ग्राहकों को तीन चौथाई मूल्य पर दी जाती है। आज ही एक कार्ड लिखकर आज्ञा दीजिए।

पता—
प्रबन्धक,
शारदा-पुस्तक-माला,
राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर,
जबलपुर।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'श्री शारदा' के नियम

लेखकों के लिये—

(१) हिन्दी-भाषा-भाषी जनता में नाममात्र का मूल्य लेकर मौलिक उच्चकोटि के साहित्य का प्रचार करना 'श्रीशारदा' का उद्देश्य है।

(२) श्रीशारदा में केवल उच्चकोटि के लेखों को स्थान दिया जायगा। कविता, गल्प, प्रहसन आदि न प्रकाशित हो सकेंगे।

(३) "श्रीशारदा" के लेखक महोदयों को अपने लेख की मौलिकता या आधार के विषय में स्पष्ट सूचना देने की कृपा करनी चाहिये।

(४) किसी लेख को प्रकाशित करने या न करने, घटाने या बढ़ाने, एवम् लौटाने न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है। सम्पादक जिन प्रबन्धों को लौटाना उचित समझते हैं, उनका डाक और रजिस्ट्री का व्यय प्राप्त होने पर वे लौटाये जाते हैं।

(५) लेख सुवाच्य लिपि में, हाशिया छोड़कर, एक ही ओर लिखे रहने चाहिये।

(६) कौनसा लेख कब प्रकाशित हो सकेगा अथवा क्यों नहीं प्रकाशित हुआ, यह बताना असम्भव है।

(७) "श्रीशारदा" में प्रकाशित पुरस्कारयोग्य प्रबन्धों पर "श्रीशारदा" के नियमानुसार, पुरस्कार दिया जाता है।

(८) समालोचनार्थ भेजी गई पुस्तकों के सम्बन्ध में किसी भी पत्र का उत्तर नहीं दिया जाता।

(९) लेख, सम्मति के हेतु पुस्तकें, परिवर्तन के सामयिक पत्र तथा सम्पादन-सम्बन्धी पत्र इस पते पर आने चाहिये—

सम्पादक, "श्रीशारदा"
हनुमानताल, जबलपुर।

ग्राहकों के लिये—

(१) "श्रीशारदा" प्रति तीसरे मास प्रकाशित होती है।

(२) इसका वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित १) है और अग्रिम लिया जाता है। विदेश के लिये वार्षिक मूल्य १॥) है। पुरानी प्रति का ॥) है। नमूने की प्रति बिना मूल्य नहीं भेजी जाती। उसके लिये मनीआर्डर से ।≠) भेजना चाहिये।

(३) "श्रीशारदा" दो बार अच्छी तरह जाँचकर यहाँ से भेजी जाती है। जिन ग्राहकों को किसी मास का अंक आगामी मास की प्रतिपदा तक न मिले, तो उन्हें पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये, पता न लगे, तो डाकघर का उत्तर हमारे पास भेजकर हमें सूचित करना चाहिये। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा, उनपर ध्यान न दिया जायगा। ग्राहकों को, पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक-नंबर जो पते की चिट पर लिखा रहता है अवश्य लिखना चाहिये।

(४) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि इस पते पर भेजने चाहिये—

प्रबन्धक

राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर जबलपुर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रैमासिक श्रीशारदा

हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि त्रैमासिक 'श्रीशारदा' से अधिक सस्ती पत्रिका अब तक नहीं देखी गयी। उसके लेख कैसे हैं इसके निर्णय का भार प्रत्येक पाठक पर है।

—श्रीशारदा-प्रबन्धक

"हिन्दी मन्दिर प्रेस" जबलपुर में पं० कन्छेदीलाल पाठक के प्रबन्ध से मुद्रित और प्रकाशित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi